# Result Mitra - रिजल्ट का साथी

## 70th BPSC Mains Test Series 1st Test Notes

साथियों नमस्कार, 70वीं BPSC आपके लिए एक सुनहरा अवसर है, जिसमें आप सफलता प्राप्त कर अपने सपने को साकार कर सकते हैं। आपके सपने को हकीकत में बदलने के लिए हम लोग 100% नि:शुल्क आपके साथ मेहनत कर रहे हैं। हमने पिछले कई वर्षों के BPSC पैटर्न को समझने के बाद इस Notes को तैयार किया है। हमारा मानना है कि 70वीं BPSC मुख्य परीक्षा में सामान्य अध्ययन के अधिकांश प्रश्न हमारे इस Notes से आयेंगे। Notes को अच्छे से पढ़िये और अपनी सफलता सुनिश्चित कीजिए।

धन्यवाद

MOST TRUSTED IAS-PCS INSTITUTE

**BPSC Mains Modern History and Art & Culture**

**Q.1** : निम्नलिखित में से प्रत्येक पर एक संक्षिप्त नोट लिखिए–

a) पटना कलम की प्रमुख विशेषताएं
b) भारत सरकार अधिनियम, 1935 के प्रमुख प्रावधान
c) बिहार के पिछड़े वर्ग के उत्थान में डॉ. कर्पूरी ठाकुर की भूमिका
d) भारत छोड़ो आंदोलन के असफलता के कारण
e) चंपारण सत्याग्रह का महत्व

**Q.2** : a) 19वीं सदी के जनजातीय आंदोलनों के प्रमुख विशेषताओं, स्वरूप एवं 20वीं सदी के राष्ट्रीय आंदोलनों पर इसके प्रभाव की व्याख्या कीजिए।
b) भारत छोड़ो आंदोलन तात्कालिक परिणामों के दृष्टिकोण से भले ही असफल रहा हो, लेकिन इसने भारतीय आजादी की राह को आसान बना दिया। कथन का विश्लेषणात्मक परीक्षण कीजिए।

**Q.3** : a) मौर्य कला की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए तथा पाल कला के साथ इसकी उन क्षेत्रों की पहचान कीजिए, जहां ये आपस में असमानता रखते हैं।
b) पटना कलम शैली के उद्भव, प्रमुख विशेषताओं एवं इसके पतनो–मुख होने के कारकों को बताइए। साथ ही इसके सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोणों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

**Q.4** : निम्न पर संक्षिप्त नोट लिखिए –

a) मधुबनी चित्रकला
b) राष्ट्रीय आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका
c) नील विद्रोह का सामाजिक–राजनीतिक प्रभाव
d) क्रिप्स मिशन प्रस्ताव
e) धर्म और राजनीति पर महात्मा गांधी के विचार

**Q.5** : a) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में उदारवादी एवं उग्रवादी गुट में मतांतर के लक्षण विद्यमान थे। कथन की समीक्षा कीजिए। इनके आपसी मतभेदों ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों को किस प्रकार प्रभावित किया ?
b) 19वीं सदी के प्रमुख सामाजिक–धार्मिक सुधारों के विषय में संक्षिप्त चर्चा कीजिए तथा बताइए कि इन सुधारों ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनों को किस प्रकार निर्देशित किया।
**Q.6** : a) 1857 से 1947 तक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनों के विभिन्न चरणों की चर्चा कीजिए।
b) विभिन्न भू–राजस्व नीतियों ने भारत की कृषि अर्थव्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित किया तथा यह नीतियां कृषक आंदोलनों के लिए जिम्मेदार थी ?

**Q.7** : a) स्वामी सहजानंद सरस्वती और किसान आंदोलन
b) मंजूषा चित्रकला के धार्मिक पक्ष
c) 1857 की क्रांति में बाबू कुंवर सिंह की भूमिका
d) स्वदेशी आंदोलन
e) 20 वी सदी के पूर्वार्द्ध में क्रांतिकारी संगठनों के उद्भव के कारक

**Q.8** : a) पाल कला पर बौद्ध धर्म का प्रभाव
b) 1942 की क्रांति में जयप्रकाश नारायण का योगदान
c) ब्रिटिश काल में बिहार में तकनीकी शिक्षा
d) संथाल विद्रोह का स्वरूप एवं परिणाम
e) रवींद्रनाथ टैगोर के राष्ट्रवाद के संबंध में विचार

## 1. a. पटना कलम की प्रमुख विशेषताएं-

पटना कलम शैली को इंडो-ब्रिटिश चित्रकला के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि इसमें फारसी, मुगल और ब्रिटिश तीनों ही कला शैलियों का मेल शामिल है। इस चित्रकला का विकास मुगल काल के पतन के दौरान तब हुआ जब चित्रकारों को मुगल दरबार में प्रश्रय देना बंद कर दिया गया। तत्पशचात् यह चित्रकार दरबार छोड़कर जीविकोपार्जन हेतु अलग-अलग क्षेत्रों में गए। इन्ही में से एक दल पूर्वी भारत की ओर आया और पहले मुर्शिदाबाद के नवाबों के यहां आश्रय ग्रहण किया परंतु 1757 में हुए बंगाल के अशांति के बाद 1760 के आस-पास यह चित्रकार पटना आ गए। उन दिनों पटना एक विकसित औद्योगिक नगर था जहां के आम लोग कला प्रेमी थे। कुछ चित्रकार पटना से होते हुए आरा और काशी ओर भी गए। पटना में बसे इन चित्रकारों ने यहां स्थानीय रूप से जिस चित्रकारी को विकसित किया उसे पटना कलम के नाम से जाना जाता है। इन चित्रों में स्थानीय जीवन, दैनिक जन जीवन, लोक संस्कृति का चित्रण के साथ-साथ व्यवसायिक दृष्टि से भी कई चित्र बनाये गए। कुछ व्यवसायिक चित्रकार स्थानीय जमींदारों नवाबों अंग्रेज सैनिकों और अधिकारियों के इच्छा अनुरूप चित्रण करते थें।

**पटना कलम कला की प्रमुख विषेशताएँ-**

- पटना कलम के चित्र लघु चित्रकला के श्रेणी के हैं, जिन्हें कागज, हाथी दांत, अभ्रक, चमड़े, तांत, कपड़ों तथा अन्य धातुओं पर चित्रित किया जाता था।
- कागज पर बनने वाले चित्र नेपाल से आयातित बांस के कागज पर बनाये गए एवं कागज को चिपकाने के लिए मैदे की लोई का प्रयोग किया जाता था।
- अभ्रक पर की गई चित्रकारी को प्रकाश के साथ देखने पर चित्रों में अतुलनीय सुंदरता दिखाई पड़ती है।
- यह चित्रकला जन-कला और जन-अभिव्यक्ति के कला के रूप में प्रचलित थी, क्योंकि चित्रकार एवं चित्र के विषय आम जनता थे।

चित्रण करने हेतु कुंची का इस्तेमाल होता था जो चित्रकारों द्वारा स्वयं, गिलहरी के बाल या घोड़े के गर्दन के बाल से तैयार किया जाता था। इसे इस्तेमाल करने के लिए पक्षियों के पंख का भी प्रयोग शामिल था। चित्रकार रंग भी स्वयं ही बनाते थें जो खनिजों, प्राकृतिक माध्यम से फल, फूल, वृक्ष के छाल के रस से निकाले जाते थे।

इसमें दैनिक जीवन, वाले विषय प्रधान चित्र वाले शामिल है जिसमें लकड़ी काटता व्यक्ति, मछली बेचती महिलायें, खेती करता किसान, भिश्ती, दाढ़ी बनाता हुआ नाई, शादी-विवाह, हाट-बाजार आदि का चित्रण किया गया है।

इस चित्रकला में पृष्ठभूमि एवं लैंडस्केप का काफी प्रयोग हुआ है। अधिकांश पृष्ठभूमि सफेद है, जबकि मुगल चित्रकला की पृष्ठभूमि काफी नक्काशीदार हुआ करती थी।

मनुष्य के चित्रों में ऊँची नाक, मोटी भौंह, गहरी आंखें, पतले चेहरें, घनी मूंछों को दर्शाया गया है।

इस चित्रकला में जीवंतता दिखाई पड़ती है, क्योंकि पशु-पक्षियों का इस रूप में चित्रण है कि चित्रकारों को इनकी आकारिकी के गहन जानकारी हों।

चित्रकार चित्र बनाने में एक लंबा वक्त लिया करते थे क्योंकि चित्र किए जाने वाले विषयों का रेखांकन गर्मी के मौसम में किया जाता था। रंग बनाने का काम बरसात में तो वही रंग भरने का काम जाड़े के दिनों में किया जाता था।

कुछ चित्रों में बॉर्डर रेखांकन भी देखने को मिलता है।

**प्रमुख चित्रकार-**

- सेवक राम
- हुलास लाल

- जयराम दास

कुछ महिला चित्रकारों के भी नाम हमें देखने को मिलते है ,जिसमें सोना बीबी और दक्षों बीबी शामिल है। अंग्रेजी व्यापारी चार्ल्स डी आइल ने 1860 के दशक में पटना में लिथोप्रेस की स्थपना की थी जहां पटना कलम के चित्रों की प्रतिकृति की छपाई कर चित्रों को विदेशों में भेजा गया।

ईश्वरी प्रसाद इस चित्रकला के अंतिम प्रतिनिधि थे। इस चित्रकारी को बिहार से बंगाल ले जाने का श्रेय ईश्वरी प्रसाद को ही दिया जाता है। 1960 में इनकी मृत्यु के बाद पटना में इस कला का लोप हो गया।

**पटना कलम के प्रसिद्ध चित्र-**

- महादेवलाल कृत रागनी गंधारी
- माधवलाल कृत विरहनी नायिका
- गोपाललाल कृत होली चित्रण
- ईश्वरी प्रसाद रचित भारत माता का चित्र

वर्तमान में इन चित्रों को पटना म्यूजियम आर्ट कॉलेज, खुदा बख्श लाइब्रेरी में संग्रहित एवं सुरक्षित रखा गया है।

बिहार सरकार ने इस कला के पुनर्जीवित हेतु 2010 में एक कैलेंडर भी जारी किया है।

**इस चित्रकला के पतन के कारण-**

- चित्रों की पुनरावृति का होना
- विदेशी सैलानियों का पटना आवागमन कम होना
- लिथोप्रेस की बढ़ती संख्या एवं कैमरे का अविष्कार
- पेशेवर कलाकारों की कमी
- राजकीय संरक्षण का अभाव

**निष्कर्ष-**

स्पष्ट है कि यह चित्रकला जनजीवन का सजीव चित्रण किया करती थी और इसका संरक्षण आगामी भारतीय चित्रकला के विकास हेतु आधार प्रदान करेगा। परंतु कल की स्वर्णिम अतीत को फिर से जीवित करने और प्रोत्साहित करने की अत्यंत आवश्यकता है।

## b. भारत सरकार अधिनियम, 1935 के प्रमुख प्रावधान

भारत सरकार अधिनियम 1935, ब्रिटिश संसद द्वारा अगस्त 1935 में पारित किया गया था। यह अधिनियम भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन की मांगों को पूरा करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम माना जाता है जो साइमन कमीशन और गोलमेज सम्मेलनों के परिणाम स्वरूप सामने आया ।

इस अधिनियम के तहत भारत में शासन की संरचना और शासन व्यवस्था में कई महत्वपूर्ण बदलाव किए गए।

**भारत सरकार अधिनियम 1935 के मुख्य प्रावधान इस प्रकार थे-**

**1. अखिल भारतीय संघ (All-India Federation):** इस अधिनियम ने भारत के लिए एक संघीय ढांचे का प्रस्ताव किया, जिसमें प्रांतों और रियासतों का एक संघ बनाने का विचार था। यह संघ पूरी तरह से अस्तित्व में नहीं आ सका क्योंकि कई रियासतों ने इसमें शामिल होने से इनकार कर दिया।

**2. प्रांतीय स्वायत्तता (Provincial Autonomy):** प्रांतों को अधिक स्वायत्तता दी गई, और केंद्रीय मामलों को छोड़ कर उन्हें अधिकांश मामलों में खुद निर्णय लेने की अनुमति मिली।

**3. द्विसदनीय विधानमंडल (Bicameral Legislature):** कुछ प्रांतों (जैसे मद्रास, बॉम्बे, बंगाल, संयुक्त प्रांत, बिहार और असम) में द्विसदनीय विधानमंडल (एक विधान सभा और एक विधान परिषद) की स्थापना की गई।

**4. शक्तियों का विभाजन (Division of Powers):** प्रांतीय और केंद्रीय सरकारों के बीच शक्तियों को तीन सूचियों में विभाजित किया गया

- संघीय सूची (Federal List): केंद्र सरकार के नियंत्रण में, जैसे रक्षा, विदेशी मामले, संचार।
- प्रांतीय सूची (Provincial List): प्रांतीय अधिकार क्षेत्र के तहत, जैसे पुलिस, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि।
- समवर्ती सूची (Concurrent List): केंद्र और प्रांतों के बीच साझा अधिकार, जैसे आपराधिक कानून और विवाह।

**5. वायसराय का नियंत्रण (Viceroy's Control):** वायसराय ने ब्रिटिश हितों की रक्षा के लिए कई अनिर्दिष्ट विषयों पर नियंत्रण बनाए रखा।

**6. मताधिकार का विस्तार:** जनसंख्या के लगभग 10% लोगों को मताधिकार प्रदान किया गया। यह मताधिकार संपत्ति, शिक्षा और आय जैसे मानदंडों पर आधारित था।

**7. संघीय न्यायालय (Federal Court):** संघीय न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया, जिसे 1937 में स्थापित किया गया। हालांकि, प्रिवी काउंसिल लंदन में अंतिम अपील की अदालत बनी रही।

**8. सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व (Communal Representation):** पृथक निर्वाचन प्रणाली का विस्तार किया गया, जिसमें मुसलमानों के अलावा दलित वर्गों (अनुसूचित जातियों), महिलाओं और श्रमिकों (श्रमिकों) को भी प्रतिनिधित्व दिया गया।

**9. ब्रिटिश नियंत्रण बरकरार रखना (Retaining British Control):** प्रांतीय स्वायत्तता में वृद्धि के बावजूद, ब्रिटिश क्राउन ने केंद्रीय नियंत्रण बनाए रखा। गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को रक्षा, विदेशी मामलों और सुरक्षा जैसे क्षेत्रों में विवेकाधीन प्राधिकार का अधिकार था।

**10. लोक सेवा आयोगों की स्थापना (Establishment of Public Service Commissions):** सिविल सेवा भर्ती और प्रशासन की निगरानी के लिए संघीय लोक सेवा आयोग, प्रांतीय लोक सेवा आयोग और संयुक्त लोक सेवा आयोग का गठन किया गया।

**11. भारतीय परिषद का उन्मूलन (Abolition of the Indian Council):** भारत सरकार अधिनियम 1858 के तहत स्थापित भारतीय परिषद को समाप्त कर दिया गया और इसके स्थान पर भारत सचिव के सलाहकारों की एक टीम स्थापित की गई।

**12. संयुक्त बैठकों के लिए प्रावधान (Provision for Joint Meetings):** विधायी गतिरोध की स्थिति में, दोनों सदनों के बीच विवादों को हल करने के लिए संयुक्त बैठकें आयोजित की जा सकती थीं।

**भारत सरकार अधिनियम 1935 का महत्व:**

संघवाद की नींव: भारत सरकार अधिनियम 1935 ने भारत में संघवाद की शुरुआत की। हालांकि यह पूरी तरह से लागू नहीं हो सका, लेकिन यह विचार भारतीय संविधान के लिए महत्वपूर्ण था और बाद में इसे भारतीय संविधान का हिस्सा बनाया गया।

प्रांतीय स्वायत्तता: इस अधिनियम के माध्यम से प्रांतों को अधिक स्वतंत्रता मिली। इसका मतलब यह था कि प्रांत अब अपनी अधिकांश नीतियों और योजनाओं में खुद निर्णय ले सकते थे, जबकि कुछ मामलों में केंद्र का नियंत्रण था। इससे भारतीयों को प्रशासन में ज्यादा भागीदारी का मौका मिला।

मताधिकार का विस्तार: इस अधिनियम के तहत मतदाताओं की संख्या को बढ़ाकर लगभग 10% किया गया, जिससे और अधिक लोगों को चुनावों में भाग लेने का मौका मिला और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को बढ़ावा मिला।

भविष्य के विकास की दिशा: इसके कई प्रावधानों, जैसे शक्ति का विभाजन, द्विसदनीय विधानमंडल और अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा, ने भारतीय संविधान को आकार देने में मदद की।

राजनीतिक जागरूकता को बढ़ावा: इस अधिनियम ने भारतीय राजनीतिक दलों के उभरने और उनकी सक्रियता को बढ़ावा दिया। इससे भारतीय नेताओं को शासन की दिशा तय करने का एक मंच मिला।

**भारत सरकार अधिनियम 1935 की आलोचना:**

गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की शक्तियाँ: हालांकि प्रांतों को अधिक स्वतंत्रता मिली, लेकिन गवर्नर-जनरल और गवर्नरों को बहुत शक्तियाँ दी गईं, जिनमें वीटो अधिकार भी शामिल था। इससे ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण कम नहीं हुआ।

पृथक निर्वाचन क्षेत्रों का विस्तार: इस अधिनियम ने अलग-अलग धर्मों और समाजों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों का विस्तार किया, जिससे समाज में और अधिक विभाजन हुआ।

कठोर संविधान: अधिनियम में एक कठोर संविधान व्यवस्था थी, जिसमें भारतीयों को कोई बदलाव करने का अधिकार नहीं था। यह अधिकार पूरी तरह से ब्रिटिश संसद के पास था, जिससे भारतीयों को संविधान में संशोधन करने का कोई मौका नहीं मिला।

असफल संघ: इस अधिनियम में प्रस्तावित संघ कभी पूरा नहीं हो सका, क्योंकि रियासतों ने इसमें भाग लेने से इनकार कर दिया, और द्वितीय विश्व युद्ध के कारण उनका ध्यान अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर था।

व्यापक अस्वीकृति: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और अन्य नेताओं ने इस अधिनियम का विरोध किया। उन्हें यह अधिनियम ब्रिटिश शासन को बनाए रखने के रूप में दिखाई दिया और इसे अस्वीकार कर दिया।

प्रतिबंधित मताधिकार: मताधिकार केवल संपत्ति, आय और शिक्षा के आधार पर दिया गया, और यह सिर्फ 10% आबादी तक सीमित था, जिससे आम जनता की राजनीतिक भागीदारी बहुत कम थी।

निष्कर्ष-

यह अधिनियम भलें ही तात्कालिक रूप से भारतीय हितों को पूर्ण करने में सफल नहीं रहा लेकिन न केवल इसने भारत के संघीय ढ़ांचा को आकार दिया बल्कि आजादी के बाद बने भारतीय संविधान का अधिकांश भाग इसी अधिनियम से लिया गया जो इस अधिनियम के महत्ता को दर्शाता है।

## c. बिहार के पिछड़े वर्ग के उत्थान में डॉ. कर्पूरी ठाकुर की भूमिका

**कर्पूरी ठाकुर का परिचय:**

कर्पूरी ठाकुर बिहार के एक प्रमुख राजनेता और सामाजिक कार्यकर्ता थे। वे बिहार के मुख्यमंत्री रहे और समाज के पिछड़े वर्गों, दलितों और अल्पसंख्यकों के लिए अपने योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्हें "समाजवादी नेता" के रूप में जाना जाता है। उनका कार्य विशेष रूप से सामाजिक न्याय, शिक्षा, और ग्रामीण विकास के क्षेत्र में महत्वपूर्ण था।

कर्पूरी ठाकुर का जन्म 24 जनवरी 1924 को बिहार के समस्तीपुर जिले के दुल्ही गांव में हुआ था। इन्होंने अपनी शिक्षा के साथ ही राजनीति में कदम रखा। वे जनता पार्टी के सदस्य थे और राज्य में जनसंघ और समाजवादी आंदोलनों के हिस्से के रूप में राजनीतिक पहचान बनाई।

उन्होंने बिहार में पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण की नीति को बढ़ावा दिया और शिक्षा के क्षेत्र में कई सुधार किए। उनका उद्देश्य गरीब और शोषित वर्गों को मुख्यधारा में लाना था। उनके नेतृत्व में बिहार में कई महत्वपूर्ण योजनाओं को लागू किया गया।

कर्पूरी ठाकुर को उनकी सामाजिक न्याय की नीति और बिना किसी भेदभाव के सभी वर्गों के कल्याण के लिए किए गए कार्यों के कारण हमेशा याद किया जाएगा। कर्पूरी ठाकुर बिहार के मुख्यमंत्री 1970 से 1971 तक रहे थे |वे 1977 में बिहार के मुख्यमंत्री के रूप में फिर से चुने गए थे।

मुंगेरी लाल की रिपोर्ट जो पिछड़ा वर्ग के आरक्षण से संबंधित है, को चर्चित करने में कर्पूरी ठाकुर की भूमिका काफी अहम थी। उनकी राजनीति का मुख्य उद्देश्य गरीबों, आदिवासियों और पिछड़ी जातियों के अधिकारों की रक्षा करना और उनके उत्थान के लिए काम करना था। वे हमेशा अपनी ईमानदारी और दृढ़ नीतियों के लिए प्रसिद्ध रहे।

कर्पूरी ठाकुर का योगदान भारतीय राजनीति में अनमोल रहेगा और वे हमेशा समाज के कमजोर वर्गों के अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले नेता के रूप में याद किए जाएंगे। कर्पूरी ठाकुर का बिहार के पिछड़े वर्गों के उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने अपने जीवन और राजनीति के दौरान समाज के हाशिए पर रहने वाले वर्गों, विशेष रूप से दलितों, पिछड़े वर्गों और आदिवासियों के अधिकारों की सुरक्षा और उनके सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए कई कदम उठाए। उनके योगदान को इस प्रकार समझा जा सकता है:

**बिहार के उत्थान में कर्पूरी ठाकुर का योगदान**

**1. आरक्षण नीति में सुधार:** कर्पूरी ठाकुर ने बिहार में पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण प्रणाली को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके कार्यकाल के दौरान, उन्होंने राज्य सरकार की नौकरियों में पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण सुनिश्चित किया और उनके लिए शिक्षा और रोजगार के अवसर खोले। यह निर्णय समाज के कमजोर वर्गों के लिए एक बड़ी राहत थी।

**2. कृषि और ग्रामीण विकास:** कर्पूरी ठाकुर ने ग्रामीण क्षेत्रों और किसानों के हित में कई योजनाएं बनाई। उन्होंने खास तौर पर छोटे और मंझले किसानों को राहत देने के लिए नीतियां बनाई, जिससे पिछड़े वर्ग के लोग, जो मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर थे, आर्थिक रूप से मजबूत हो सके। उनका उद्देश्य बिहार के ग्रामीण इलाकों में पिछड़े वर्गों की हालत सुधारना था।

**3. शिक्षा में सुधार:** कर्पूरी ठाकुर ने पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा के क्षेत्र में सुधार करने का प्रयास किया। उन्होंने ग्रामीण इलाकों में शिक्षा की पहुंच बढ़ाने के लिए स्कूलों का विस्तार किया और गरीब परिवारों के बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने के लिए विशेष योजनाओं की शुरुआत की। इससे पिछड़े वर्ग के बच्चों को शिक्षा के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक उन्नति का अवसर मिला। कर्पूरी ठाकुर ने बिहार में माध्यमिक शिक्षा में कई बदलाव किए

जिससे शिक्षा समाज के निचले तबके तक पहुंच सकी। साथ ही उन्होंने महिलाओं के लिए शिक्षा की राह आसान बनाने का भी प्रयास किया।

**4. सामाजिक न्याय का समर्थन:** कर्पूरी ठाकुर ने सामाजिक न्याय को प्राथमिकता दी। उन्होंने पिछड़े वर्गों को समान अधिकार देने और उनके जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए कई कानून और नीतियां बनाई। उन्होंने हमेशा यह प्रयास किया कि समाज के कमजोर वर्गों के खिलाफ होने वाले भेदभाव को समाप्त किया जाए।

**5. राजनीतिक और सामाजिक सशक्तिकरण:** कर्पूरी ठाकुर ने पिछड़े वर्गों के लोगों को राजनीति में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया। उनका मानना था कि सामाजिक परिवर्तन तब तक संभव नहीं है, जब तक उन वर्गों के लोग राजनीतिक रूप से सशक्त नहीं होते। इसके परिणामस्वरूप, उन्होंने ऐसे कदम उठाए, जो दलितों और पिछड़ों को राजनीतिक मंच पर लाने में मददगार साबित हुए।

**निष्कर्ष:**

कर्पूरी ठाकुर का बिहार के सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान रहा। वे बिहार के मुख्यमंत्री रहे और उनकी नीतियों ने समाज के पिछड़े वर्गों के लिए कई महत्वपूर्ण अवसर उत्पन्न किए। उनका कार्य बिहार में सामाजिक न्याय, शिक्षा, और समृद्धि की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ।

कर्पूरी ठाकुर का बिहार के विकास में योगदान अद्वितीय था। उनकी नीतियों ने समाज के पिछड़े वर्गों के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और बिहार को एक समृद्ध और समावेशी समाज बनाने की दिशा में प्रगति की। उनकी राजनीति और विचारधारा ने बिहार के सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य को बदलने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

## d. भारत छोड़ो आंदोलन के असफलता के कारण

भारत छोड़ो आंदोलन, जिसे 'क्विट इंडिया मूवमेंट' भी कहा जाता है, 8 अगस्त 1942 को महात्मा गांधी के नेतृत्व में शुरू हुआ था लेकिन बहुत जल्दी ही यह स्वत: नियंत्रित हो गया| इसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य को भारत से बाहर करना था और भारत को स्वतंत्रता दिलाना था। हालांकि, इस आंदोलन को सफलता नहीं मिली और ब्रिटिश शासन ने इसे कुचलने में सफलता प्राप्त की। इसके बावजूद, यह आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक निर्णायक मोड़ था यह आंदोलन सफल न हो सका किंतु इसने स्वतंत्रता की मांग की धार को तेज कर दिया

**आंदोलन के असफलता के कारण-**

1. नेतृत्व का अभाव

गांधीजी ने भारत छोड़ो आंदोलन के नेतृत्व के रूप में पूर्ण अहिंसा और नैतिकता के सिद्धांतों को रखा, लेकिन इस आंदोलन की शुरुआत के समय ही अधिकांश प्रमुख नेताओं को "ऑपरेशन जीरो ऑवर" चला कर गिरफ्तार कर लिया गया , इसके कारण आंदोलन में नेतृत्व का संकट उत्पन्न हुआ। आंदोलन में राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय नेतृत्व का अभाव था, जिससे यह आन्दोलन प्रभावी रूप से संगठित नहीं हो पाया।

2. व्यापक समर्थन का अभाव

भारत छोड़ो आंदोलन में भारतीय जनता आक्रोशित थी, लेकिन व्यापक रूप से जनता ने इसमें भाग नहीं लिया। इस आंदोलन में सभी वर्गों का सहयोग नहीं था। किसान, मजदूर, और शहरी वर्ग आंदोलन में सीमित रूप से शामिल हुए थे। व्यापारियों और अमीर वर्ग के लिए आंदोलन का समर्थन सीमित था, क्योंकि ब्रिटिश शासन के साथ उनके आर्थिक संबंध थे और वे इस संघर्ष से हानि का सामना करने से डरते थे। इस प्रकार, समाज के विभिन्न वर्गों का असंतुलित समर्थन आंदोलन की सफलता में रुकावट डालने वाला कारक था।

3. ब्रिटिश शासन की सख्ती और बल प्रयोग

ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को कुचलने के लिए जबरदस्त बल प्रयोग किया। आंदोलन के पहले ही दिन, ब्रिटिश प्रशासन ने गांधीजी सहित सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद पुलिस और मिलिट्री की मदद से आंदोलनकारियों को दबा दिया गया और प्रदर्शनकारियों पर सख्त कार्रवाई की गई। इससे आंदोलन के प्रभाव को नियंत्रित किया गया और यह जल्द ही कदमों पर दम तोड़ गया। ब्रिटिश सरकार का बल प्रयोग और सेना की मौजूदगी ने आंदोलन को असफल करने में एक प्रमुख भूमिका निभाई।

4. सांप्रदायिक असहमति और संघर्ष

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान देश में सांप्रदायिक तनाव था। विभिन्न धर्मों और समुदायों के बीच सांप्रदायिक संघर्ष बढ़ने के कारण भारतीय समाज में विभाजन हो गया था। इस समय मुस्लिम लीग, जो कि पाकिस्तान के गठन के लिए संघर्ष कर रही थी, ने आंदोलन का समर्थन नहीं किया। इसके अतिरिक्त, हिंदू-मुस्लिम एकता में कमी के कारण यह आंदोलन राष्ट्रव्यापी संघर्ष में नहीं बदल पाया।

इस विभाजन ने आंदोलन की शक्ति को कमजोर कर दिया और सांप्रदायिक हिंसा के कारण आंदोलनों को स्थानीय स्तर पर ही सीमित कर दिया।

5. जापान और जर्मनी से बाहरी सहायता की उम्मीद

भारतीय नेताओं ने यह उम्मीद जताई थी कि जापान और जर्मनी, जो उस समय द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष कर रहे थे, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का समर्थन करेंगे। हालांकि, जापान और जर्मनी की ओर से कोई ठोस समर्थन नहीं मिला। जापान ने 1942 में ब्रिटिश भारत के खिलाफ आक्रमण करने की योजना बनाई, लेकिन इसके बावजूद कोई सैन्य समर्थन या सहयोग भारत को प्राप्त नहीं हुआ। बाहरी सहायता की कमी ने आंदोलन को कमजोर कर दिया।

6. गांधीजी की अहिंसा की नीति

गांधीजी का अहिंसा और नैतिक प्रतिरोध का सिद्धांत आंदोलन का मुख्य आधार था। हालांकि यह विचार बहुत प्रभावशाली था, लेकिन कई कार्यकर्ता इसे पूरी तरह से अपनाने में असफल रहे। आंदोलनकारियों द्वारा हिंसा और अराजकता फैलने के कारण आंदोलन को ब्रिटिश शासन द्वारा आसानी से दबाया गया।

7. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, अकाली दल, पंजाब यूनियनिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी जैसे राजनीतिक दलों की तटस्थता

भारत के तत्कालीन कई प्रमुख राजनीतिक दल जैसे यूनियनिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी और आरएसएस तथा अकाली दल अधिक प्रमुख राजनीतिक दलों में इस आंदोलन को केवल कांग्रेस पार्टी का आंदोलन बोल कर अपने कार्यकर्ताओं को इससे दूर रखा , जिसके कारण जो समर्थन इस आंदोलन को मिलना चाहिए था वह समर्थन नहीं मिल पाया

8. बदलते वैश्विक समीकरण

बदलते वैश्विक समीकरणों में यह साफ हो चुका था कि अब उपनिवेशवाद का दौरा नहीं रहा और जितने भी औपनिवेशिक देश हैं वह अपने उपनिवेशों को स्वतंत्रता देंगे

**आंदोलन को पूरी तरह से असफ़ल नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इसके कुछ सकारात्मक परिणाम भी रहे-**

1. ब्रिटिश शासन के खिलाफ जनता का आक्रोश बढ़ा

भारत छोड़ो आंदोलन ने भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के खिलाफ गहरी नफ़रत और आक्रोश उत्पन्न किया। आंदोलन के आह्वान ने भारत में राष्ट्रीय जागरूकता को प्रोत्साहित किया और ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ एकजुटता का संदेश दिया। इससे भारतीय जनता ने यह स्पष्ट किया कि वे ब्रिटिश शासन से मुक्ति चाहते हैं और अब किसी भी स्थिति में ब्रिटिश साम्राज्य के तहत नहीं रह सकते।

2. ब्रिटिश शासन के खिलाफ व्यापक विरोध

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान पूरे देश में विरोध प्रदर्शनों, हड़तालों और प्रतिरोध की लहर चल पड़ी। आंदोलन ने सिर्फ शहरी क्षेत्रों को नहीं, बल्कि गांवों और छोटे शहरों को भी आंदोलनों से जोड़ा। इससे यह साबित हुआ कि अब भारत के विभिन्न हिस्सों में ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक गहरी असहमति और विरोध था।

3. गांधीजी का नेतृत्व और नैतिक प्रभाव

यह गांधीजी के नैतिक और वैचारिक प्रभाव का ही परिणाम था कि भारत में विभिन्न वर्गों और समुदायों ने इस आंदोलन में भाग लिया। गांधीजी का यह नेतृत्व आने वाले समय में भारतीय राजनीति और स्वतंत्रता संग्राम के लिए प्रेरणास्त्रोत बन गया।

4. राजनीतिक परिदृश्य में परिवर्तन

भारत छोड़ो आंदोलन ने भारतीय राजनीति के परिदृश्य को बदल दिया। जब ब्रिटिश सरकार ने प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया, तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को एक बड़ा धक्का लगा। हालांकि, इससे कांग्रेस के नेताओं की गिरफ्तारी के बावजूद, आंदोलन ने एक बड़े लोकतांत्रिक जनादेश को सामने रखा, जिससे स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा मिली। ब्रिटिश शासन को यह महसूस हुआ कि भारत में स्वतंत्रता के प्रति जनभावना बहुत मजबूत हो चुकी है।

5. स्वतंत्रता संग्राम की गति में वृद्धि

भारत छोड़ो आंदोलन ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की गति और दिशा को तेज किया। ब्रिटिश शासन को इस आंदोलन से यह सन्देश मिला कि भारतीय जनता अब अंग्रेजी शासन के तहत नहीं रह सकती। इस आंदोलन के बाद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक नई प्रबलता आई, जो अंततः 1947 में भारतीय स्वतंत्रता के रूप में परिणत हुई।

6. आपातकाल और भारतीय राजनीति की नई शुरुआत

भारत छोड़ो आंदोलन के परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने 1942 में भारत में आपातकाल घोषित कर दिया, जिससे उन्होंने आंदोलन को दबाने के लिए सख्त उपाय किए। हालांकि, इस आपातकाल ने भारतीय समाज में राजनीतिक उथल-पुथल को जन्म दिया, जिससे लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्ष , समानांतर सरकार और भूमिगत गतिविधियों के द्वारा तेज हो गया। आपातकाल के दौरान भारतीय नेताओं की गिरफ्तारी और उनके साथ किए गए

अत्याचारों ने भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के खिलाफ गहरी नफरत पैदा की, जो स्वतंत्रता संग्राम की एक महत्वपूर्ण भूमिका थी।

7. भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय एकता का सृजन

भारत छोड़ो आंदोलन ने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को एकजुट किया। हिंदू, मुसलमान, सिख, आदिवासी, और अन्य समाज के विभिन्न वर्गों ने एकजुट होकर ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष किया। यह आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गया और विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक समूहों के बीच आपसी सहयोग को प्रोत्साहित किया।

8. आंदोलन के बाद राजनीतिक परिवर्तन

भारत छोड़ो आंदोलन के बाद ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष में और तेजी आई। इससे यह स्पष्ट हो गया कि भारत में अब ब्रिटिश साम्राज्य का शासन ज्यादा समय तक नहीं चल सकता। 1942 के आंदोलन के बाद, ब्रिटिश सरकार को यह महसूस हुआ कि अब भारतीय स्वतंत्रता की मांग को नकारा नहीं किया जा सकता। इसके परिणामस्वरूप, भारत के स्वतंत्रता संग्राम के नेता जैसे जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, और मौलाना आज़ाद ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए और अधिक मजबूती से काम करना शुरू किया, जो 1947 में ब्रिटिश शासन के अंत के रूप में परिणत हुआ।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उमड़ी जन-भावना के कारण कई जगहों जैसे बलिया ,चटगांव ,तालचर ,सतारा में समानांतर सरकारी स्थापित हुई जिन्होंने जिसमें कई जगह पर तो आजादी तक इन समानांतर सरकारों ने सक्रिय रूप से काम किया इसके सिवा आजाद दस्त के रूप में कई हिंसक भूमिगत गतिविधियां ने अंग्रेजी शासन की कमर तोड़ दी थी सारे संचार साधन ध्वस्त हो चुके थे जनता का साफ संदेश था कि अब वह इस अत्याचारी शासन को बर्दाश्त नहीं करेंगे

यह भारत छोड़ो आंदोलन ही था जिसके कारण भारत पर ब्रिटिश शासन के तीन पिलर्स सिविल सर्विसेज , आर्मी और पुलिस का मनोभाव और ब्रिटिश सत्ता के प्रति प्रतिबद्धता में बदलाव आ गया जिसके कारण ब्रिटिश अब भारत पर शासन करने की स्थिति में नहीं थे

INA के सैनिकों के मुकदमे के दौरान जनता के विद्रोह, कराची और मुंबई NAVAL बेस पर सैनिकों के विरोध, सिविल सर्वेंट का अंग्रेज अधिकारियों के आदेशों की नाफरमानी और पुलिस बल का कुछ जगहों पर जनता पर अत्याचार का विरोध के रूप में देखा जा सकता है

**निष्कर्ष:**

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का महत्वपूर्ण हिस्सा था, लेकिन इसकी असफलता के पीछे कई कारण थे। इसमें नेतृत्व का अभाव, विस्तृत समर्थन की कमी, ब्रिटिश शासन का सख्त दमन, और सांप्रदायिक संघर्ष जैसी समस्याएँ थीं। बावजूद इसके, इस आंदोलन ने भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष को और गहरा किया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा दी। इसके परिणामस्वरूप 1947 में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

## e. चंपारण सत्याग्रह का महत्व

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में चंपारण सत्याग्रह (1917) एक महत्वपूर्ण घटना थी, जिसने महात्मा गांधी को राष्ट्रीय राजनीति में एक प्रभावशाली नेता के रूप में स्थापित किया। यह सत्याग्रह न केवल किसानों के शोषण के खिलाफ एक आंदोलन था, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सत्य और अहिंसा के नए युग की शुरुआत भी थी।

1. चंपारण सत्याग्रह की पृष्ठभूमि

ब्रिटिश शासन के दौरान बिहार के चंपारण जिले में नील की खेती करने वाले किसानों को तीनकठिया प्रणाली के तहत जबरन नील की खेती करने के लिए मजबूर किया जाता था। अंग्रेज नील व्यापारी किसानों को कम दामों पर नील उगाने के लिए बाध्य करते और फिर ऊँचे दामों पर बेचते थे। इससे किसानों को अत्यधिक शोषण और आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता था । साथ ही नील की खेती के कारण मिट्टी की उर्वरता में भारी कमी होती थी जिससे उत्पादकता नकारात्मक रूप से प्रभावित होती थी

इस शोषण के खिलाफ राजकुमार शुक्ल ने महात्मा गांधी को चंपारण आने के लिए आमंत्रित किया। गांधीजी ने अप्रैल 1917 में चंपारण पहुँचकर किसानों की समस्याओं को समझा और उनका नेतृत्व किया।

2. चंपारण सत्याग्रह का महत्व

(क) गांधीजी का पहला सत्याग्रह और भारतीय राजनीति में प्रवेश

चंपारण सत्याग्रह महात्मा गांधी का भारत में पहला सफल सत्याग्रह आंदोलन था। इससे पहले उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में अहिंसक आंदोलन का सफल नेतृत्व किया था, लेकिन चंपारण में उन्होंने पहली बार भारतीय किसानों की समस्याओं को समझा और उनके लिए संघर्ष किया।

(ख) सत्याग्रह और अहिंसा की शक्ति का परिचय

गांधीजी ने इस आंदोलन में अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों का प्रयोग किया। उन्होंने अंग्रेजी प्रशासन को यह अहसास कराया कि जनता के अधिकारों का दमन अब संभव नहीं होगा। इससे ब्रिटिश शासन के खिलाफ अहिंसक संघर्ष की नींव पड़ी।

(ग) किसानों के अधिकारों की रक्षा और तीनकठिया प्रथा का अंत

चंपारण सत्याग्रह के कारण सरकार को तीनकठिया प्रणाली को समाप्त करना पड़ा। किसानों को नील की जबरन खेती से मुक्ति मिली और उन्हें अपनी इच्छानुसार फसल उगाने की स्वतंत्रता मिली। इससे किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

(घ) जनजागरण और सामाजिक सुधार

गांधीजी ने चंपारण में न केवल किसानों की समस्याओं को उठाया, बल्कि स्वास्थ्य, स्वच्छता और शिक्षा के क्षेत्र में भी काम किया। उन्होंने वहां विद्यालयों की स्थापना की और लोगों को जागरूक किया। यह आंदोलन सिर्फ राजनीतिक नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक सुधारों से भी जुड़ा था।

(ड़) ब्रिटिश प्रशासन की पहली हार और भारतीयों में आत्मविश्वास

इस आंदोलन के कारण ब्रिटिश सरकार को पहली बार भारतीय जनता की मांगों के आगे झुकना पड़ा। गांधीजी की दृढ़ता के कारण ब्रिटिश प्रशासन ने जमींदारों और नील व्यापारियों के शोषण को खत्म करने के लिए कमेटी का गठन किया, जिसमें गांधीजी भी सदस्य थे। इससे भारतीयों में यह विश्वास पैदा हुआ कि अहिंसक संघर्ष के माध्यम से वे अपने अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

(च) राष्ट्रीय आंदोलन को नई दिशा

चंपारण सत्याग्रह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक मील का पत्थर साबित हुआ। इसके बाद, गांधीजी ने खेड़ा सत्याग्रह (1918), अहमदाबाद मिल मजदूर आंदोलन (1918), और फिर असहयोग आंदोलन (1920-22) का नेतृत्व किया। इस आंदोलन ने राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को नई दिशा दी।

**3. निष्कर्ष**

चंपारण सत्याग्रह केवल किसानों के अधिकारों की रक्षा का आंदोलन नहीं था, बल्कि यह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गांधीवादी विचारधारा की पहली परीक्षा थी। इस आंदोलन ने भारतीय जनता को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सत्य, अहिंसा और आत्मबल के माध्यम से संघर्ष करने की प्रेरणा दी। यह भारत के स्वतंत्रता संग्राम का प्रारंभिक लेकिन अत्यधिक प्रभावशाली चरण था, जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ भारतीय जनमानस में आत्मनिर्भरता और संघर्ष की भावना को जन्म दिया।

इस प्रकार, चंपारण सत्याग्रह ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की दिशा को नई गति और दृष्टि प्रदान की, जिससे भारत को स्वतंत्रता प्राप्त करने में सहायता मिली।

## 2 a.19वीं सदी के जनजातीय आंदोलनों के प्रमुख विशेषताओं, स्वरूप एवं 20वीं सदी के राष्ट्रीय आंदोलनों पर इसके प्रभाव की व्याख्या कीजिए।

19वीं सदी में भारत में हुए जनजातीय विद्रोह ब्रिटिश शासन की शोषणकारी नीतियों, भूमि व्यवस्था में हस्तक्षेप, आर्थिक शोषण और सामाजिक-सांस्कृतिक दमन के खिलाफ थे। ये विद्रोह मुख्य रूप से झारखंड, उड़ीसा, बंगाल, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के आदिवासी समुदायों द्वारा किए गए। संथाल विद्रोह (1855), हो विद्रोह (1820-21), कोल विद्रोह (1831-32), मुंडा विद्रोह (1899-1900), और भील विद्रोह (1817-1846) जैसे आंदोलनों ने ब्रिटिश प्रशासन की जनजातीय नीतियों को चुनौती दी।

**19वीं सदी में जनजातीय विद्रोहों के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है—**

1. भूमि-व्यवस्था में हस्तक्षेप और जमींदारी प्रथा का लागू होना

- ब्रिटिश शासन से पहले जनजातीय समुदाय सामूहिक भूमि स्वामित्व प्रणाली में विश्वास रखते थे और जंगलों तथा पहाड़ियों पर उनका पारंपरिक अधिकार था।
- ब्रिटिश सरकार ने जमींदारी, रैयतवारी और महालवारी प्रणाली लागू करके जमींदारों और साहूकारों को शक्तिशाली बना दिया।
- इससे आदिवासी अपनी पारंपरिक जमीन से वंचित हो गए, और भूमिहीन मजदूर बनने को मजबूर हुए।
- उदाहरण: संथाल विद्रोह (1855-56) जमींदारों और साहूकारों द्वारा संथाल आदिवासियों की जमीन हड़पने के खिलाफ था।

2. वन नीतियों और आजीविका पर प्रभाव

- ब्रिटिश सरकार ने वन अधिनियम लागू कर जंगलों को सरकारी संपत्ति घोषित कर दिया।
- इससे आदिवासियों के शिकार, झूम खेती (Shifting Cultivation) और लकड़ी के व्यापार पर रोक लगा दी गई।

- वन क्षेत्रों में बाहरी लोगों (दिकुओं) का प्रवेश बढ़ गया, जिससे आदिवासी आजीविका संकट में आ गई।
- उदाहरण: कोया विद्रोह (1879-80, 1886, 1922-24) ब्रिटिश प्रशासन द्वारा आदिवासियों को जंगलों से बेदखल करने के खिलाफ था।

3. ब्रिटिश प्रशासन और न्यायिक प्रणाली से असंतोष

- ब्रिटिश कानूनों और न्यायिक प्रणाली ने आदिवासियों की पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था को तोड़ दिया।
- न्यायालयों में आदिवासियों की भाषा, रीति-रिवाज और परंपराओं को मान्यता नहीं दी गई।
- प्रशासनिक अधिकारियों ने जमींदारों और महाजनों का समर्थन किया, जिससे आदिवासी और अधिक शोषित हुए।
- उदाहरण: कोल विद्रोह (1831-32) में कोल जनजाति ने ब्रिटिश न्यायिक प्रणाली और बाहरी जमींदारों के अत्याचार के खिलाफ विद्रोह किया।

4. आर्थिक शोषण और साहूकारों का बढ़ता प्रभाव

- ब्रिटिश राज के तहत आदिवासियों पर उच्च कर लगाए गए, जिससे वे साहूकारों से कर्ज लेने के लिए मजबूर हुए।
- साहूकारों ने ऊँची ब्याज दर पर ऋण दिया और जब आदिवासी ऋण नहीं चुका पाए, तो उनकी जमीनें हड़प ली गईं।
- साहूकारों और व्यापारियों द्वारा आदिवासियों के साथ अनुचित लेन-देन और आर्थिक शोषण किया गया।
- उदाहरण: भील विद्रोह (1817-1846) में भील जनजाति ने साहूकारों, जमींदारों और अंग्रेजी प्रशासन के खिलाफ संघर्ष किया।

5. बाहरी लोगों (दिकुओं) का बढ़ता प्रभाव

- ब्रिटिश शासन के तहत बंगाल, बिहार और उत्तर प्रदेश से आए व्यापारियों, जमींदारों और साहूकारों ने आदिवासी इलाकों में घुसपैठ की।
- इन बाहरी लोगों ने आदिवासियों की जमीन हड़प ली और उन्हें श्रमिक बनने के लिए मजबूर किया।
- दिकुओं (बाहरी लोगों) के कारण आदिवासियों की संस्कृति, भाषा और पारंपरिक सामाजिक व्यवस्था पर संकट आया।
- उदाहरण: संथाल विद्रोह (1855-56) का मुख्य कारण बाहरी साहूकारों और व्यापारियों का बढ़ता प्रभाव था।

6. मिशनरियों की गतिविधियाँ और धार्मिक हस्तक्षेप

- ब्रिटिश शासन के दौरान ईसाई मिशनरियों ने आदिवासी इलाकों में धर्मांतरण की गतिविधियाँ तेज कर दीं।
- इससे आदिवासियों की पारंपरिक धार्मिक मान्यताओं और रीति-रिवाजों को खतरा पैदा हुआ।
- कई जगहों पर मिशनरियों ने आदिवासियों को ब्रिटिश सरकार का समर्थक बनाने की कोशिश की, जिससे आदिवासी समाज में असंतोष बढ़ा।

- उदाहरण: मुंडा विद्रोह (1899-1900) में बिरसा मुंडा ने ईसाई मिशनरियों और ब्रिटिश शासन के खिलाफ आंदोलन किया।

7. जबरन मजदूरी (बेगारी) और अन्यायपूर्ण कर प्रणाली

- ब्रिटिश सरकार ने आदिवासियों पर जबरन बेगारी (Forced Labour) थोप दी, जिसमें उन्हें बिना वेतन के काम करने के लिए मजबूर किया जाता था।
- कई जगहों पर आदिवासियों को रेलवे, बागानों और कोयला खदानों में कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर किया गया।
- इससे आदिवासी समाज में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ गहरा असंतोष पैदा हुआ।
- उदाहरण: ताना भगत आंदोलन (1914-1920) में ताना भगत ने जबरन कर वसूली और बेगारी के खिलाफ आंदोलन किया।

8. आदिवासी नेताओं का प्रभाव और सांस्कृतिक पुनर्जागरण

- 19वीं सदी के दौरान कई आदिवासी नेताओं ने जनजातीय अस्मिता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण की शुरुआत की।
- बिरसा मुंडा, सिदो-कान्हू, तिलका मांझी, बुधु भगत जैसे नेताओं ने आदिवासियों को संगठित कर ब्रिटिश शासन और बाहरी शोषकों के खिलाफ संघर्ष का नेतृत्व किया।
- इन आंदोलनों ने आगे चलकर स्वतंत्रता संग्राम को भी प्रेरित किया।
- उदाहरण: बिरसा मुंडा का आंदोलन (1899-1900), जिसे "उलगुलान" (महाविद्रोह) कहा जाता है, आदिवासी स्वाभिमान का प्रतीक बना।

**आंदोलनों का स्वरूप-**

स्थानीय प्रतिरोध: इन आंदोलनों का मुख्य रूप से स्थानीय स्तर पर प्रतिरोध रहा है, जिसमें जनजातियों ने बाहरी शासन के खिलाफ अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष किया।

सशस्त्र संघर्ष: कई जनजातीय आंदोलनों में सशस्त्र संघर्ष की भावना भी रही, जैसे कि संताली विद्रोह और कोल विद्रोह। इसमें जनजातीय लोग अपनी संस्कृति और अस्तित्व की रक्षा के लिए हथियारों का सहारा लेते थे।

धार्मिक और सांस्कृतिक प्रतीक: जनजातीय आंदोलनों में सांस्कृतिक और धार्मिक प्रतीकों का भी महत्व था। उदाहरण के लिए, संथाल विद्रोह में स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा और आस्था का एक बड़ा हिस्सा था, जो जनजातीय समुदाय को एकजुट करता था।

अधिकांश जनजातीय विद्रोह वर्ग आधार की जगह जातीय आधार पर संगठित थे जैसे कॉल संथाल हो मुंडा कभी भी इस जनजातीय ने संगठित रूप से एक जनजातीय वर्ग के तौर पर विद्रोह नहीं किया

जनजातीय विद्रोह आंतरिक शुद्धिकरण एवं आंतरिक संगठनात्मकता पर जोर दिया करते थे जिसमें सबसे पहले आदिवासियों को खुद की संस्कृति पर अभिमान और  स्वयं में व्याप्त बुराइयों को त्यागने की बात कही जाती थी और संगठनत्मकता पर बल दिया जाता था जिसे दुश्मनों का सामना किया जा सके आदिवासी विद्रोह सभी बाहरी लोगों के विरुद्ध नहीं थे यह केवल शोषक तत्वों के विरुद्ध था

**जनजातीय आंदोलन की विशेषताएँ –:**

जनजातीय आंदोलनों का भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इन आंदोलनों के माध्यम से आदिवासी समाज ने अपनी सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक स्थिति को सुधारने के लिए संघर्ष किया। इन आंदोलनों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से संघर्ष: जनजातीय आंदोलन मुख्य रूप से सामाजिक और सांस्कृतिक असमानताओं के खिलाफ थे। आदिवासी समाज ने अपने पारंपरिक रीति-रिवाजों, संस्कृति, और जीवनशैली की रक्षा के लिए संघर्ष किया। वे बाहरी प्रभाव, विशेष रूप से हिन्दू धर्म और जातिवाद के प्रचलन के खिलाफ थे।

आर्थिक शोषण: जनजातीय क्षेत्रों में ब्रिटिश साम्राज्य और उनके सहयोगियों के द्वारा आदिवासियों का शोषण किया गया। भूमि अधिग्रहण, शोषणकारी करों, और जंगलों की उपज पर नियंत्रण ने आदिवासी लोगों की आर्थिक स्थिति को कमजोर किया। इन शोषणों के खिलाफ जनजातीय आंदोलनों का संघर्ष हुआ।

भूमि और जंगल के अधिकारों की रक्षा: अधिकांश जनजातीय आंदोलन भूमि और जंगलों पर आदिवासियों के पारंपरिक अधिकारों की रक्षा के लिए थे। अंग्रेजों द्वारा जंगलों का अधिग्रहण और भूमि सुधार के प्रयासों ने आदिवासियों की जमीन को छीन लिया। इसलिए इन आंदोलनों में इन अधिकारों की बहाली की मांग की गई।

आत्मनिर्भरता और स्वतंत्रता की चाह: जनजातीय समाज ने अपनी स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता के लिए संघर्ष किया। आदिवासी आंदोलन यह सुनिश्चित करना चाहते थे कि उनका समाज बाहरी ताकतों और शोषण से मुक्त रहे, और वे अपनी शासन व्यवस्था, संस्कृति, और संसाधनों पर नियंत्रण रखें।

स्थानीय नेतृत्व और स्वदेशी विचारधारा: इन आंदोलनों में स्थानीय नेताओं का महत्वपूर्ण योगदान था, जो अपने समाज की समस्याओं को अच्छी तरह से समझते थे। स्वदेशी विचारधारा और परंपराओं के आधार पर ये आंदोलन चले थे। इनका उद्देश्य बाहरी शासन के खिलाफ जनजातीय एकता और संघर्ष को बढ़ावा देना था।

ब्रिटिश शासन के खिलाफ प्रतिरोध: अधिकांश जनजातीय आंदोलन ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ थे। अंग्रेजों ने आदिवासी क्षेत्रों में कानून और प्रशासन लागू किया था, जिससे उनके पारंपरिक जीवनशैली और संसाधनों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इन आंदोलनों ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ सशस्त्र और अहिंसक दोनों तरीकों से संघर्ष किया।

**उदाहरण के रूप में प्रमुख जनजातीय आंदोलन:**

- संथाल विद्रोह (1855-1856): यह आंदोलन ब्रिटिश शासन के खिलाफ था, जिसमें आदिवासियों ने अपने पारंपरिक अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष किया।
- कोल विद्रोह (1831-1832): यह आंदोलन कोल जनजाति द्वारा भूमि और शोषण के खिलाफ किया गया था।
- कर्मा आंदोलन (1930-1940): यह आंदोलन छत्तीसगढ़ क्षेत्र में आदिवासियों के अधिकारों के लिए था, जहां लोग धार्मिक विश्वासों का उपयोग करते हुए अन्याय के खिलाफ संघर्ष करते थे।
- शक्ति का विकेंद्रीकरण: जनजातीय आंदोलनों में एक प्रमुख विशेषता यह थी कि ये आंदोलन एक केंद्रीकृत नेतृत्व के बिना, व्यापक और विकेंद्रीकृत तरीके से हुए थे। हर जनजातीय समुदाय ने अपने स्थानीय मामलों के अनुसार आंदोलन चलाए, और यह जनजातीय एकता को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण था।

19वीं सदी में जनजातीय विद्रोहों द्वारा ब्रिटिश उपनिवेशी शासन को दी गई चुनौती

19वीं सदी में ब्रिटिश उपनिवेशी शासन की भूमि नीतियों, आर्थिक शोषण, सामाजिक दमन और प्रशासनिक हस्तक्षेप के कारण जनजातीय समुदायों में भारी असंतोष पनपा। इसके परिणामस्वरूप, संथाल विद्रोह (1855-56), कोल विद्रोह (1831-32), मुंडा विद्रोह (1899-1900), भील विद्रोह (1817-1846), और ताना भगत आंदोलन (1914-1920) जैसे कई विद्रोह हुए। इन जनजातीय आंदोलनों ने ब्रिटिश शासन को कमजोर किया, उसकी नीतियों को चुनौती दी और प्रशासन को अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर किया।

**इन विद्रोहों ने ब्रिटिश उपनिवेशी शासन को कई प्रकार से चुनौती दी:**

1. ब्रिटिश शासन की भूमि नीति के खिलाफ संघर्ष

- ब्रिटिश सरकार ने जमींदारी व्यवस्था और स्थायी बंदोबस्त लागू किया, जिससे जनजातीय समुदायों की सामूहिक भूमि स्वामित्व प्रणाली समाप्त हो गई।
- साहूकारों, व्यापारियों और जमींदारों ने आदिवासियों की जमीन हड़प ली, जिससे वे भूमिहीन मजदूर बनने को मजबूर हुए।
- संथाल विद्रोह (1855-56) संथाल आदिवासियों द्वारा जमींदारों और ब्रिटिश प्रशासन के खिलाफ किया गया था, जिसने प्रशासन को हिलाकर रख दिया।
- इस विद्रोह के परिणामस्वरूप, ब्रिटिश सरकार को संथाल परगना क्षेत्र को अलग प्रशासनिक इकाई घोषित करना पड़ा।

2. वन कानूनों और आदिवासियों की आजीविका पर हमले के खिलाफ विरोध

- 19वीं सदी में ब्रिटिश सरकार ने वनों को सरकारी संपत्ति घोषित कर दिया और आदिवासियों को उनके परंपरागत अधिकारों से वंचित कर दिया।
- जंगलों में उनके शिकार करने, लकड़ी काटने और झूम खेती करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया।
- कोया विद्रोह (1879-80, 1886, 1922-24) में आदिवासियों ने वन कानूनों और ब्रिटिश शोषण के खिलाफ लड़ाई लड़ी।
- इन विद्रोहों के कारण सरकार को वन नीतियों में बदलाव करने पड़े और कुछ क्षेत्रों में आदिवासियों को सीमित अधिकार देने पड़े।

3. बाहरी लोगों (दिकुओं) के हस्तक्षेप का विरोध

- ब्रिटिश शासन में बंगाल, बिहार और उत्तर भारत से जमींदार, व्यापारी और साहूकार आदिवासी क्षेत्रों में घुसपैठ करने लगे।
- इन बाहरी लोगों (दिकुओं) ने आदिवासियों का शोषण किया और उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था को प्रभावित किया।
- कोल विद्रोह (1831-32) में कोल जनजाति ने बाहरी जमींदारों और महाजनों के खिलाफ हिंसक विद्रोह किया, जिससे बंगाल, बिहार और उड़ीसा के कई हिस्सों में प्रशासन ठप हो गया।
- इस विद्रोह के बाद, ब्रिटिश सरकार को कोल जनजाति के लिए विशेष प्रशासनिक नियम बनाने पड़े।

4. ईसाई मिशनरियों के धर्मांतरण प्रयासों का विरोध

- ब्रिटिश सरकार के संरक्षण में ईसाई मिशनरियों ने आदिवासियों का बड़े पैमाने पर धर्मांतरण करना शुरू किया।
- मिशनरियों ने आदिवासी इलाकों में स्कूल और चर्च बनाए, जिससे उनकी पारंपरिक धार्मिक मान्यताएँ कमजोर होने लगीं।
- मुंडा विद्रोह (1899-1900) के दौरान बिरसा मुंडा ने ब्रिटिश मिशनरियों के प्रभाव और जबरन धर्मांतरण के खिलाफ "उलगुलान" (महाविद्रोह) का नेतृत्व किया।
- इस विद्रोह के कारण ब्रिटिश सरकार को आदिवासियों की धार्मिक स्वतंत्रता को लेकर अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करना पड़ा।

5. ब्रिटिश कर प्रणाली और जबरन मजदूरी का विरोध

- ब्रिटिश सरकार ने आदिवासियों पर भारी कर लगाए और उन्हें जबरन बेगारी (Forced Labour) करने के लिए मजबूर किया।
- रेलवे, कोयला खदानों और चाय बागानों में आदिवासियों को कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर किया जाता था।
- ताना भगत आंदोलन (1914-1920) में आदिवासियों ने कर न देने, बेगारी खत्म करने और ब्रिटिश शासन का विरोध करने का संकल्प लिया।
- इस आंदोलन का प्रभाव यह हुआ कि ब्रिटिश प्रशासन को आदिवासियों की समस्याओं पर ध्यान देना पड़ा और कुछ करों में छूट देनी पड़ी।

6. ब्रिटिश प्रशासन की कमजोरी को उजागर करना

- जनजातीय विद्रोहों ने ब्रिटिश प्रशासन को कई बार अस्थिर कर दिया और सरकार की नीतियों की कमजोरियों को उजागर किया।
- कई विद्रोहों में ब्रिटिश सेना को बड़ी संख्या में सैनिक तैनात करने पड़े, जिससे सरकार की वित्तीय स्थिति पर भी असर पड़ा।
- संथाल और मुंडा विद्रोहों में आदिवासियों ने ब्रिटिश सेना को कड़ी चुनौती दी, जिससे यह स्पष्ट हुआ कि आदिवासियों को लंबे समय तक दबाया नहीं जा सकता।
- इन विद्रोहों ने ब्रिटिश प्रशासन को यह सिखाया कि यदि आदिवासियों की समस्याओं को अनदेखा किया गया, तो वे बड़े स्तर पर संगठित हो सकते हैं।

7. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरणा देना

- 19वीं सदी के जनजातीय विद्रोहों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- आदिवासी नेताओं ने ब्रिटिश शासन के अन्याय के खिलाफ संघर्ष करने की परंपरा स्थापित की, जिससे भविष्य में कांग्रेस और अन्य संगठनों को प्रेरणा मिली।
- बिरसा मुंडा, सिदो-कान्हू, तिलका मांझी और बुधु भगत जैसे नेता भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रतीक बन गए।

- 20वीं सदी में महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस और अन्य नेताओं ने भी जनजातीय समुदायों को संगठित कर राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल किया।

19वीं सदी के जनजातीय विद्रोहों ने ब्रिटिश उपनिवेशी शासन को चुनौती दी और उसकी कमजोरियों को उजागर किया। इन आंदोलनों ने ब्रिटिश सरकार को अपनी नीतियों में बदलाव करने पर मजबूर किया और यह साबित किया कि आदिवासी समुदाय अन्याय और शोषण को स्वीकार नहीं करेंगे।

**इन विद्रोहों के कारण ब्रिटिश सरकार को—**

- नील और वन नीतियों में बदलाव करना पड़ा।
- आदिवासियों के लिए विशेष कानून और प्रशासनिक व्यवस्थाएँ बनानी पड़ीं।
- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के लिए आदिवासी जागरूकता का मार्ग प्रशस्त हुआ।
- इस प्रकार, जनजातीय विद्रोहों ने ब्रिटिश शासन की जड़ें हिला दीं और भविष्य के राष्ट्रीय आंदोलनों को प्रेरित किया। इन विद्रोहों का प्रभाव भारत की आजादी के संघर्ष और स्वतंत्र भारत की आदिवासी नीतियों में भी देखा जा सकता है।

जनजातीय आंदोलनों का राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रभाव –

जनजातीय आंदोलनों का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इन आंदोलनों ने न केवल आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष किया, बल्कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इन आंदोलनों ने कई पहलुओं में राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित किया, जिनकी चर्चा निम्नलिखित रूप में की जा सकती है:

राष्ट्रीय एकता में योगदान: जनजातीय आंदोलनों ने भारतीय समाज में एकता को बढ़ावा दिया। आदिवासी क्षेत्रों में चल रहे आंदोलनों ने राष्ट्रीय आंदोलन को एक नई दिशा दी। इन आंदोलनों के नेताओं ने न केवल अपने समुदाय की समस्याओं को उठाया, बल्कि वे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के उद्देश्य में भी शामिल हुए, जिससे समग्र राष्ट्रीय एकता में वृद्धि हुई। उदाहरण के रूप में, बिरसा मुंडा और उनके अनुयायी, जिन्होंने मुंडा आंदोलन को नेतृत्व दिया, ने भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष को भी समर्थन दिया।

ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष को मजबूत करना: जनजातीय आंदोलन ने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ विरोध को और भी मजबूत किया। कई जनजातीय आंदोलनों, जैसे कि संथाल विद्रोह (1855-1856), कोल विद्रोह (1831-1832) और कर्मा आंदोलन (1930-1940), ब्रिटिश शासन की नीतियों के खिलाफ थे और इन आंदोलनों ने राष्ट्रीय आंदोलन के सिद्धांतों को मजबूती दी। आदिवासियों का शोषण और उनके पारंपरिक अधिकारों का हनन ब्रिटिश शासन के खिलाफ व्यापक असंतोष का कारण बना, जिससे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूती मिली।

आंदोलनों में सांप्रदायिक एकता: जनजातीय आंदोलनों ने भारतीय समाज में सांप्रदायिक और जातिवाद की सीमाओं को पार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आदिवासी आंदोलन नेताओं ने भारतीय समाज को यह समझाया कि सभी वर्गों और समुदायों का एकत्र होना जरूरी है ताकि साम्राज्यवाद और सामंतवाद से मुक्ति मिल सके। बिरसा मुंडा और अन्य जनजातीय नेताओं ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख नेताओं के साथ समन्वय स्थापित किया और एकजुटता की भावना को बढ़ावा दिया।

आदिवासी समाज में जागरूकता का प्रसार: जनजातीय आंदोलनों ने आदिवासी समाज में राजनीतिक और सामाजिक जागरूकता का प्रसार किया। इन आंदोलनों ने उन्हें उनके अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में अवगत कराया, जिससे उनका संघर्ष राष्ट्रीय स्तर पर उभरकर सामने आया। इससे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में एक नया दृष्टिकोण और समर्थन मिला, विशेषकर जब आदिवासी समाज ने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ एकजुट होकर आवाज उठाई।

राष्ट्रीय आंदोलन में नेतृत्व की विविधता: जनजातीय आंदोलनों ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व में विविधता की भावना को प्रोत्साहित किया। पहले राष्ट्रीय आंदोलन में उच्च जातियों और शहरी क्षेत्रों के नेताओं का प्रभुत्व था, लेकिन जनजातीय नेताओं के संघर्ष ने यह सिद्ध किया कि राष्ट्रीय संघर्ष में सभी वर्गों और समुदायों को शामिल किया जाना चाहिए। बिरसा मुंडा, रघुनाथ मुंडा, और सिधू-कान्हू जैसे जनजातीय नेताओं ने अपनी प्रेरणादायक नेतृत्व क्षमता से राष्ट्रीय आंदोलन को नई ऊर्जा दी।

स्वतंत्रता संग्राम के लिए आदिवासी संघर्ष का सांस्कृतिक पहलू: जनजातीय आंदोलनों ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को एक सांस्कृतिक आयाम भी दिया। आदिवासी नेता अपनी संस्कृति, परंपराओं, और जीवनशैली की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे थे, जो भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण की दिशा में प्रेरित किया। बिरसा मुंडा ने आदिवासी संस्कृति और धर्म की रक्षा के लिए 'धर्म' और 'स्वतंत्रता' की अवधारणा को जोड़ा, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन में एक नई चेतना उत्पन्न हुई।

ब्रिटिश नीतियों के खिलाफ संघर्ष की दिशा: जनजातीय आंदोलनों ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं को यह समझने में मदद की कि ब्रिटिश साम्राज्य केवल शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं था, बल्कि ग्रामीण और आदिवासी इलाकों में भी उनके शोषणकारी कदमों का गहरा प्रभाव था। इस प्रकार, इन आंदोलनों ने ब्रिटिश नीतियों की आलोचना और सुधार के लिए एक नई दिशा दी, जिसे राष्ट्रीय आंदोलन के नेता भी अपना रहे थे।

**निष्कर्ष:**

19वीं सदी के जनजातीय विद्रोहों के प्रमुख कारण आर्थिक शोषण, भूमि छीनने की नीतियाँ, बाहरी लोगों का प्रभाव, धार्मिक हस्तक्षेप और ब्रिटिश शासन का अन्यायपूर्ण रवैया थे। इन विद्रोहों ने आदिवासियों में राजनीतिक चेतना विकसित की और स्वतंत्रता संग्राम की नींव रखी।19वीं सदी के जनजातीय विद्रोहों ने ब्रिटिश उपनिवेशी शासन को चुनौती दी और उसकी कमजोरियों को उजागर किया। इन आंदोलनों ने ब्रिटिश सरकार को अपनी नीतियों में बदलाव करने पर मजबूर किया और यह साबित किया कि आदिवासी समुदाय अन्याय और शोषण को स्वीकार नहीं करेंगे।

## b. भारत छोड़ो आंदोलन तात्कालिक परिणामों के दृष्टिकोण से भले ही असफल रहा हो, लेकिन इसने भारतीय आजादी की राह को आसान बना दिया। कथन का विश्लेषणात्मक परीक्षण कीजिए।

भारत छोड़ो आंदोलन, जिसे 'क्विट इंडिया मूवमेंट' भी कहा जाता है, 8 अगस्त 1942 को महात्मा गांधी के नेतृत्व में शुरू हुआ था लेकिन बहुत जल्दी ही यह स्वत: नियंत्रित हो गया| इसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य को भारत से बाहर करना था और भारत को स्वतंत्रता दिलाना था। हालांकि, इस आंदोलन को सफलता नहीं मिली और ब्रिटिश शासन ने इसे कुचलने में सफलता प्राप्त की। इसके बावजूद, यह आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक निर्णायक मोड़ था यह आंदोलन सफल न हो सका किंतु इसने स्वतंत्रता की मांग की धार को तेज कर दिया

**आंदोलन के असफलता के कारण-**

1. नेतृत्व का अभाव

गांधीजी ने भारत छोड़ो आंदोलन के नेतृत्व के रूप में पूर्ण अहिंसा और नैतिकता के सिद्धांतों को रखा, लेकिन इस आंदोलन की शुरुआत के समय ही अधिकांश प्रमुख नेताओं को “ऑपरेशन जीरो ऑवर” चला कर गिरफ्तार कर लिया गया , इसके कारण आंदोलन में नेतृत्व का संकट उत्पन्न हुआ। आंदोलन में राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय नेतृत्व का अभाव था, जिससे यह आन्दोलन प्रभावी रूप से संगठित नहीं हो पाया।

2. व्यापक समर्थन का अभाव

भारत छोड़ो आंदोलन में भारतीय जनता आक्रोशित थी, लेकिन व्यापक रूप से जनता ने इसमें भाग नहीं लिया। इस आंदोलन में सभी वर्गों का सहयोग नहीं था। किसान, मजदूर, और शहरी वर्ग आंदोलन में सीमित रूप से शामिल हुए थे। व्यापारियों और अमीर वर्ग के लिए आंदोलन का समर्थन सीमित था, क्योंकि ब्रिटिश शासन के साथ उनके आर्थिक संबंध थे और वे इस संघर्ष से हानि का सामना करने से डरते थे। इस प्रकार, समाज के विभिन्न वर्गों का असंतुलित समर्थन आंदोलन की सफलता में रुकावट डालने वाला कारक था।

3. ब्रिटिश शासन की सख्ती और बल प्रयोग

ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को कुचलने के लिए जबरदस्त बल प्रयोग किया। आंदोलन के पहले ही दिन, ब्रिटिश प्रशासन ने गांधीजी सहित सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद पुलिस और मिलिट्री की मदद से आंदोलनकारियों को दबा दिया गया और प्रदर्शनकारियों पर सख्त कार्रवाई की गई। इससे आंदोलन के प्रभाव को नियंत्रित किया गया और यह जल्द ही कदमों पर दम तोड़ गया। ब्रिटिश सरकार का बल प्रयोग और सेना की मौजूदगी ने आंदोलन को असफल करने में एक प्रमुख भूमिका निभाई।

4. सांप्रदायिक असहमति और संघर्ष

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान देश में सांप्रदायिक तनाव था। विभिन्न धर्मों और समुदायों के बीच सांप्रदायिक संघर्ष बढ़ने के कारण भारतीय समाज में विभाजन हो गया था। इस समय मुस्लिम लीग, जो कि पाकिस्तान के गठन के लिए संघर्ष कर रही थी, ने आंदोलन का समर्थन नहीं किया। इसके अतिरिक्त, हिंदू-मुस्लिम एकता में कमी के कारण यह आंदोलन राष्ट्रव्यापी संघर्ष में नहीं बदल पाया।

इस विभाजन ने आंदोलन की शक्ति को कमजोर कर दिया और संप्रदायिक हिंसा के कारण आंदोलनों को स्थानीय स्तर पर ही सीमित कर दिया।

5. जापान और जर्मनी से बाहरी सहायता की उम्मीद

भारतीय नेताओं ने यह उम्मीद जताई थी कि जापान और जर्मनी, जो उस समय द्वितीय विश्व युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष कर रहे थे, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का समर्थन करेंगे। हालांकि, जापान और जर्मनी की ओर से कोई ठोस समर्थन नहीं मिला। जापान ने 1942 में ब्रिटिश भारत के खिलाफ आक्रमण करने की योजना बनाई, लेकिन इसके बावजूद कोई सैन्य समर्थन या सहयोग भारत को प्राप्त नहीं हुआ। बाहरी सहायता की कमी ने आंदोलन को कमजोर कर दिया।

6. गांधीजी की अहिंसा की नीति

गांधीजी का अहिंसा और नैतिक प्रतिरोध का सिद्धांत आंदोलन का मुख्य आधार था। हालांकि यह विचार बहुत प्रभावशाली था, लेकिन कई कार्यकर्ता इसे पूरी तरह से अपनाने में असफल रहे। आंदोलनकारियों द्वारा हिंसा और अराजकता फैलने के कारण आंदोलन को ब्रिटिश शासन द्वारा आसानी से दबाया गया।

7. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, अकाली दल, पंजाब यूनियनिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी जैसे राजनीतिक दलों की तटस्थता

भारत के तत्कालीन कई प्रमुख राजनीतिक दल जैसे यूनियनिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी और आरएसएस तथा अकाली दल अधिक प्रमुख राजनीतिक दलों में इस आंदोलन को केवल कांग्रेस पार्टी का आंदोलन बोल कर अपने

कार्यकर्ताओं को इससे दूर रखा , जिसके कारण जो समर्थन इस आंदोलन को मिलना चाहिए था वह समर्थन नहीं मिल पाया

8. बदलते वैश्विक समीकरण

बदलते वैश्विक समीकरणों में यह साफ हो चुका था कि अब उपनिवेशवाद का दौरा नहीं रहा और जितने भी औपनिवेशिक देश हैं वह अपने उपनिवेशों को स्वतंत्रता देंगे

**आंदोलन को पूरी तरह से असफ़ल नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इसके कुछ सकारात्मक परिणाम भी रहे-**

1. ब्रिटिश शासन के खिलाफ जनता का आक्रोश बढ़ा

भारत छोड़ो आंदोलन ने भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के खिलाफ गहरी नफ़रत और आक्रोश उत्पन्न किया। आंदोलन के आह्वान ने भारत में राष्ट्रीय जागरूकता को प्रोत्साहित किया और ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ एकजुटता का संदेश दिया। इससे भारतीय जनता ने यह स्पष्ट किया कि वे ब्रिटिश शासन से मुक्ति चाहते हैं और अब किसी भी स्थिति में ब्रिटिश साम्राज्य के तहत नहीं रह सकते।

2. ब्रिटिश शासन के खिलाफ व्यापक विरोध

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान पूरे देश में विरोध प्रदर्शनों, हड़तालों और प्रतिरोध की लहर चल पड़ी। आंदोलन ने सिर्फ शहरी क्षेत्रों को नहीं, बल्कि गांवों और छोटे शहरों को भी आंदोलनों से जोड़ा। इससे यह साबित हुआ कि अब भारत के विभिन्न हिस्सों में ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक गहरी असहमति और विरोध था।

3. गांधीजी का नेतृत्व और नैतिक प्रभाव

यह गांधीजी के नैतिक और वैचारिक प्रभाव का ही परिणाम था कि भारत में विभिन्न वर्गों और समुदायों ने इस आंदोलन में भाग लिया। गांधीजी का यह नेतृत्व आने वाले समय में भारतीय राजनीति और स्वतंत्रता संग्राम के लिए प्रेरणास्त्रोत बन गया।

4. राजनीतिक परिदृश्य में परिवर्तन

भारत छोड़ो आंदोलन ने भारतीय राजनीति के परिदृश्य को बदल दिया। जब ब्रिटिश सरकार ने प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया, तो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को एक बड़ा धक्का लगा। हालांकि, इससे कांग्रेस के नेताओं की गिरफ्तारी के बावजूद, आंदोलन ने एक बड़े लोकतांत्रिक जनादेश को सामने रखा, जिससे स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा मिली। ब्रिटिश शासन को यह महसूस हुआ कि भारत में स्वतंत्रता के प्रति जनभावना बहुत मजबूत हो चुकी है।

5. स्वतंत्रता संग्राम की गति में वृद्धि

भारत छोड़ो आंदोलन ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की गति और दिशा को तेज किया। ब्रिटिश शासन को इस आंदोलन से यह सन्देश मिला कि भारतीय जनता अब अंग्रेजी शासन के तहत नहीं रह सकती। इस आंदोलन के बाद भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में एक नई प्रबलता आई, जो अंततः 1947 में भारतीय स्वतंत्रता के रूप में परिणत हुई।

6. आपातकाल और भारतीय राजनीति की नई शुरुआत

भारत छोड़ो आंदोलन के परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने 1942 में भारत में आपातकाल घोषित कर दिया, जिससे उन्होंने आंदोलन को दबाने के लिए सख्त उपाय किए। हालांकि, इस आपातकाल ने भारतीय समाज में राजनीतिक उथल-पुथल को जन्म दिया, जिससे लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्ष  समानांतर सरकार और भूमिगत

गतिविधियों के द्वारा तेज हो गया। आपातकाल के दौरान भारतीय नेताओं की गिरफ्तारी और उनके साथ किए गए अत्याचारों ने भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के खिलाफ गहरी नफरत पैदा की, जो स्वतंत्रता संग्राम की एक महत्वपूर्ण भूमिका थी।

7. भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय एकता का सृजन

भारत छोड़ो आंदोलन ने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को एकजुट किया। हिंदू, मुसलमान, सिख, आदिवासी, और अन्य समाज के विभिन्न वर्गों ने एकजुट होकर ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष किया। यह आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय एकता का प्रतीक बन गया और विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक समूहों के बीच आपसी सहयोग को प्रोत्साहित किया।

8. आंदोलन के बाद राजनीतिक परिवर्तन

भारत छोड़ो आंदोलन के बाद ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष में और तेजी आई। इससे यह स्पष्ट हो गया कि भारत में अब ब्रिटिश साम्राज्य का शासन ज्यादा समय तक नहीं चल सकता। 1942 के आंदोलन के बाद, ब्रिटिश सरकार को यह महसूस हुआ कि अब भारतीय स्वतंत्रता की मांग को नकारा नहीं किया जा सकता। इसके परिणामस्वरूप, भारत के स्वतंत्रता संग्राम के नेता जैसे जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, और मौलाना आज़ाद ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए और अधिक मजबूती से काम करना शुरू किया, जो 1947 में ब्रिटिश शासन के अंत के रूप में परिणत हुआ।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उमड़ी जनभावना के कारण कई जगहों जैसे बलिया ,चटगांव ,तालचेर सतारा में समानांतर सरकारी स्थापित हुई जिन्होंने जिसमें कई जगह पर तो आजादी तक इन समानांतर सरकारों ने सक्रिय रूप से काम किया इसके सिवा आजाद दस्त के रूप में कई हिंसक भूमिगत गतिविधियां ने अंग्रेजी शासन की कमर तोड़ दी थी सारे संचार साधन ध्वस्त हो चुके थे जनता का साफ संदेश था कि अब वह इस अत्याचारी शासन को बर्दाश्त नहीं करेंगे

यह भारत छोड़ो आंदोलन ही था जिसके कारण भारत पर ब्रिटिश शासन के तीन पिलर्स सिविल सर्विसेज , आर्मी और पुलिस का मनोभाव और ब्रिटिश सत्ता के प्रति प्रतिबद्धता में बदलाव आ गया जिसके कारण ब्रिटिश अब भारत पर शासन करने की स्थिति में नहीं थे

INA के सैनिकों के मुकदमे के दौरान जनता के विद्रोह, कराची और मुंबई NAVAL बेस पर सैनिकों के विरोध, सिविल सर्वेंट का अंग्रेज अधिकारियों के आदेशों की नाफरमानी और पुलिस बल का कुछ जगहों पर जनता पर अत्याचार का विरोध के रूप में देखा जा सकता है

**निष्कर्ष:**

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का महत्वपूर्ण हिस्सा था, लेकिन इसकी असफलता के पीछे कई कारण थे। इसमें नेतृत्व का अभाव, विस्तृत समर्थन की कमी, ब्रिटिश शासन का सख्त दमन, और सांप्रदायिक संघर्ष जैसी समस्याएँ थीं। बावजूद इसके, इस आंदोलन ने भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के प्रति असंतोष को और गहरा किया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा दी। इसके परिणामस्वरूप 1947 में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई।

**3 a.मौर्य कला की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए तथा पाल कला के साथ इसकी उन क्षेत्रों की पहचान कीजिए, जहां ये आपस में असमानता रखते हैं।**

मौर्यकाल (321-185 ईसा पूर्व) भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण युग था, जिसमें कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। मौर्य शासकों, विशेषकर सम्राट अशोक के शासनकाल में कला को राज्य संरक्षण प्राप्त हुआ। मौर्यकालीन कला की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

### 1. स्थापत्य कला (Architecture)

• राजमहलों और भवनों का निर्माण: मौर्यकाल में लकड़ी और पत्थर से निर्मित भव्य भवनों का निर्माण हुआ। पाटलिपुत्र में खुदाई से प्राप्त काष्ठ निर्मित महलों के अवशेष इसकी पुष्टि करते हैं।

• किलेबंदी और नगर नियोजन: पाटलिपुत्र जैसे नगरों की रक्षा के लिए दीवारें एवं किले बनाए गए थे, जो सुरक्षा एवं प्रशासनिक केंद्र थे।

• स्तंभ निर्माण: मौर्यकालीन स्तंभ अपनी उत्कृष्टता के लिए प्रसिद्ध हैं। ये एक ही पत्थर से निर्मित होते थे और इनमें पालिश की गई सतह होती थी। अशोक स्तंभों पर धर्मलिपियाँ उत्कीर्ण की गई थीं। प्रसिद्ध अशोक स्तंभों में सारनाथ, वैशाली, और लौरिया-नंदनगढ़ के स्तंभ प्रमुख हैं।

### 2. मूर्तिकला (Sculpture)

• पॉलिश युक्त प्रस्तर मूर्तियाँ: मौर्यकाल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी अत्यधिक चमकदार पालिश युक्त प्रस्तर मूर्तियाँ थीं, जैसे कि दीदारगंज यक्षी मूर्ति।

• यक्ष और यक्षिणी मूर्तियाँ: विभिन्न स्थानों जैसे पाटलिपुत्र, मथुरा, और बसाढ़ से प्राप्त विशालकाय यक्ष और यक्षिणी मूर्तियाँ मौर्यकालीन मूर्तिकला का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

• धार्मिक मूर्तिकला: बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के कारण बौद्ध मूर्तिकला का विकास हुआ।

### 3. स्तूप निर्माण (Stupa Architecture)

• अशोक द्वारा बौद्ध स्तूपों का निर्माण: अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए विभिन्न स्तूपों का निर्माण कराया।

• सांची एवं भरहुत स्तूप: ये प्रमुख मौर्यकालीन स्तूप हैं, जिनमें बाद में शुंग काल में तोरण (गेटवे) जोड़े गए।

### 4. चित्रकला (Painting)

• मौर्यकालीन चित्रकला का अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है, लेकिन माना जाता है कि गुफाओं और महलों की दीवारों पर चित्रांकन किया जाता था।

### 5. गुफा वास्तुकला (Rock-cut Architecture)

• बराबर और नागार्जुनी गुफाएँ: बिहार में स्थित इन गुफाओं को अशोक और उनके उत्तराधिकारी दशरथ ने आजीवक संप्रदाय के भिक्षुओं को दान में दिया था।

• पॉलिश युक्त सतह: इन गुफाओं की सतह पर अद्भुत पालिश देखी जा सकती है, जो मौर्यकाल की उन्नत तकनीक को दर्शाती है।

### 6. अशोककालीन धर्म प्रचार और कला

• अशोक द्वारा निर्मित शिलालेख, स्तंभलेख एवं धर्मचक्र प्रतीक कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

• मौर्यकालीन कला पर ईरानी, यूनानी और भारतीय प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

**मौर्य कला पर बौद्ध धर्म का प्रभाव-**

मौर्यकालीन कला में बौद्ध धर्म के प्रभाव की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. बौद्ध स्तूपों का निर्माण (Construction of Buddhist Stupas)

• मौर्य काल में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए प्रमुख रूप से स्तूपों का निर्माण हुआ, जो बौद्ध धर्म के प्रमुख धार्मिक प्रतीक थे।

• सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए कई स्तूपों और मठों का निर्माण कराया। इन स्तूपों में भगवान बुद्ध की राख रखी जाती थी और इन्हें श्रद्धा और पूजा का स्थान माना जाता था।

• प्रसिद्ध सांची स्तूप, जो मौर्यकाल के दौरान बनाया गया, इसका उदाहरण है जहाँ बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है।

• स्तूपों की संरचना में धार्मिक महत्व और शांति का प्रतीक शामिल था, और ये संरचनाएँ मौर्यकालीन कला का महत्वपूर्ण हिस्सा थीं।

2. अशोक स्तंभ और शिलालेख (Ashoka Pillars and Edicts)

• सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु अशोक स्तंभों का निर्माण कराया। इन स्तंभों पर धर्मशासन और धार्मिक उपदेशों को उकेरा गया था।

• धर्मचक्र (Wheel of Dharma) का चित्रण इन स्तंभों पर प्रमुख रूप से किया गया, जो बौद्ध धर्म का प्रतीक है। इन स्तंभों पर अंकित शिलालेखों में अशोक ने बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को फैलाने का संदेश दिया।

• अशोक स्तंभों की पालिश और शिलालेखों की विस्तृत नक्काशी मौर्य कला की विशिष्ट विशेषताएँ हैं।

• अशोक के स्तंभों में बौद्ध धर्म के सात आदर्श (धर्म, अहिंसा, सच्चाई, धर्माचरण, दया, पवित्रता, और संयम) का प्रचार किया गया था, जिससे मौर्य कला पर बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है।

3. बौद्ध मूर्तिकला का विकास (Development of Buddhist Sculpture)

• मौर्य कला में बौद्ध धर्म का प्रभाव मूर्तिकला के माध्यम से भी सामने आया। बौद्ध धर्म के ध्यान और ध्यानस्थ मुद्राओं (ध्यान मुद्रा, अभय मुद्रा) वाली मूर्तियाँ मौर्यकालीन कला में प्रमुख रूप से उकेरी गईं।

• मौर्यकाल की मूर्तियाँ अत्यंत सूक्ष्म और भावपूर्ण थीं, और इनमें विशेष ध्यान मुद्रा को दर्शाया गया था, जो बौद्ध धर्म के ध्यान और तपस्या के सिद्धांतों को दर्शाता था।

• दीदारगंज यक्षी जैसी मूर्तियाँ मौर्य काल की उत्कृष्ट बौद्ध मूर्तियाँ मानी जाती हैं, जो इस समय की कला और धार्मिक प्रभाव को स्पष्ट रूप से दर्शाती हैं।

• मौर्य काल में बौद्ध मूर्तियाँ जीवन के सुख, शांति और मोक्ष की प्रतीक थीं, और इन्हें शांति की भावना के साथ प्रस्तुत किया गया था।

4. बौद्ध धर्म का प्रचार और कला के विविध रूप (Spread of Buddhism and its Artistic Forms)

• सम्राट अशोक के नेतृत्व में बौद्ध धर्म का प्रचार न केवल भारत में हुआ, बल्कि सिल्क रूट के माध्यम से बौद्ध धर्म चीन, तिब्बत, दक्षिण-पूर्व एशिया, और मध्य एशिया तक फैल गया।

• मौर्यकालीन कला में बौद्ध धर्म के प्रभाव को देखकर यह कहा जा सकता है कि मौर्यकाल में बौद्ध धर्म की कला ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय कला की पहचान को फैलाया।

• मौर्य कला में धार्मिक गुफाएँ और चैत्य हॉल जैसे भवन भी बौद्ध धर्म के लिए बनाए गए थे, जो ध्यान और साधना के स्थल थे।

5. बौद्ध धर्म के प्रतीक (Buddhist Symbols)

• मौर्यकालीन कला में बौद्ध धर्म के प्रतीकों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। विशेष रूप से धर्मचक्र (Wheel of Dharma), जो सम्राट अशोक के स्तंभों पर अंकित था, और लोटस (कमल) जैसे प्रतीक बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव को दर्शाते हैं।

• इन प्रतीकों का प्रयोग बौद्ध कला और वास्तुकला में किया गया, जो बौद्ध धर्म के सिद्धांतों और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते थे।

• धर्मचक्र का प्रतीक मौर्यकालीन कला में बौद्ध धर्म के शिक्षाओं का प्रतीक बन गया और इसे धर्म के फैलाव और शांति का प्रतीक माना गया।

**पालकालीन कला की प्रमुख विशेषताएँ-**

पाल वंश (8वीं से 12वीं शताब्दी) के शासनकाल में कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। पाल शासकों ने विशेष रूप से बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान किया, जिससे इस काल की कला पर बौद्ध प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस काल में मूर्तिकला, चित्रकला, और वास्तुकला का महत्वपूर्ण विकास हुआ।

1. स्थापत्य कला (Architecture)

• महाविहारों और मठों का निर्माण: पालकालीन स्थापत्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता महाविहारों का निर्माण था, जैसे कि नालंदा, विक्रमशिला, सोमपुरा, ओदंतपुरी और जगद्दल महाविहार। ये शिक्षा के प्रमुख केंद्र थे और इनमें भव्य बौद्ध मठों एवं मंदिरों का निर्माण किया गया था।

• मंदिर निर्माण: पालकालीन मंदिरों में नागर और वेसर शैली का मिश्रण देखा जाता है। इनमें सबसे प्रसिद्ध तेराकोटा मंदिर हैं, जो बंगाल क्षेत्र में विकसित हुए।

• स्तूप एवं चैत्य: पाल शासकों ने बौद्ध धर्म के महायान और वज्रयान संप्रदाय को बढ़ावा दिया, जिसके परिणामस्वरूप कई स्तूप और चैत्य बनाए गए।

2. मूर्तिकला (Sculpture)

• धातु एवं प्रस्तर मूर्तियाँ: पालकाल में कांस्य एवं पत्थर से निर्मित बौद्ध, हिंदू और जैन मूर्तियों का निर्माण हुआ।

• मुख्य केंद्र: पालकालीन मूर्तिकला बिहार, बंगाल और ओडिशा में अत्यधिक विकसित हुई।

• विशेषताएँ:

- मूर्तियों में लयबद्ध मुद्राएँ (अभयमुद्रा, ध्यानमुद्रा, वरदमुद्रा) देखी जाती हैं।

- मूर्तियों की आकृति लंबी एवं सुडौल होती थी।
- बौद्ध मूर्तियाँ शांत और ध्यानस्थ मुद्रा में होती थीं, जबकि हिंदू मूर्तियों में अधिक अलंकरण होता था।
- मूर्तियों के आधार पर बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

3. चित्रकला (Painting)

• पालकालीन लघु चित्रकला (Miniature Paintings)

- यह चित्रकला ताड़पत्रों और कागज पर बनाई जाती थी।
- इसमें बौद्ध धर्म की घटनाओं और देवी-देवताओं के चित्रण किए जाते थे।
- नालंदा, विक्रमशिला और सोमपुरा महाविहारों में इस शैली का व्यापक उपयोग हुआ।
- यह शैली बाद में नेपाल और तिब्बत में विकसित हुई।

• मुख्य विशेषताएँ

- रंगों का उत्कृष्ट उपयोग किया गया था।
- चित्रों में मानव आकृतियाँ कोमल एवं सौम्य दिखाई देती हैं।
- इनमें धार्मिक भावनाओं का चित्रण प्रमुख रूप से किया गया था।

4. पालकालीन धातु कला (Metal Art)

• पाल शासकों के संरक्षण में धातु से निर्मित मूर्तियाँ अत्यंत प्रसिद्ध थीं।

• मुख्य रूप से पीतल और कांस्य धातु का उपयोग किया जाता था।

• बंगाल एवं बिहार में मिली पालकालीन कांस्य मूर्तियाँ अत्यधिक नक्काशीदार और सौम्य होती थीं।

• ये मूर्तियाँ नेपाल, तिब्बत और दक्षिण-पूर्व एशिया में भी भेजी जाती थीं, जिससे इस कला का अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव पड़ा।

5. बौद्ध धर्म का प्रभाव

• पाल काल में बौद्ध धर्म विशेष रूप से महायान और वज्रयान संप्रदाय के रूप में विकसित हुआ।

• मूर्तियों एवं चित्रकला में बौद्ध देवी-देवताओं जैसे तारा, अवलोकितेश्वर, मंजुश्री आदि का चित्रण हुआ।

• पाल कला का प्रभाव तिब्बत, नेपाल और दक्षिण-पूर्व एशिया की कला पर भी पड़ा।

6. स्थापत्य शैली (Architectural Style)

• पालकालीन मंदिरों में बंगाल की विशेष स्थापत्य शैली देखी जाती है, जिसे बाद में बंगाल स्कूल ऑफ आर्किटेक्चर के रूप में जाना गया।

• मंदिरों में रेखाग्रस्त शिखर और सजावटी आधार की विशेषता पाई जाती है।

• बंगाल क्षेत्र में चाला (छप्पर) शैली के मंदिर बनाए गए, जिनका प्रभाव बाद में मुगलकालीन बंगाली स्थापत्य पर भी पड़ा।

7. पालकालीन कला का महत्व

• पालकालीन कला ने भारत में बौद्ध कला को नया आयाम दिया।

• नालंदा और विक्रमशिला महाविहारों में विकसित चित्रकला और मूर्तिकला परंपरा नेपाल और तिब्बत तक पहुँची।

• पालकालीन धातु कला की मूर्तियाँ भारत में मध्यकालीन मूर्तिकला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मानी जाती हैं।

मौर्य कला और पाल कला में समानताएँ और असमानताएँ

मौर्य काल (321-185 ईसा पूर्व) और पाल काल (8वीं-12वीं शताब्दी) भारत की कला इतिहास में दो महत्वपूर्ण युग थे। इन दोनों कालों में कला की विभिन्न शैलियाँ विकसित हुईं, लेकिन दोनों के बीच कुछ समानताएँ और असमानताएँ भी हैं।

**समानताएँ (Similarities)**

1.धार्मिक प्रभाव (Religious Influence):

- मौर्य काल: इस काल में बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ था और सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म को राज्य धर्म के रूप में अपनाया। इसके परिणामस्वरूप, बौद्ध धर्म की मूर्तियाँ, स्तूप, और स्तंभ निर्माण पर जोर दिया गया।
- पाल काल: इस काल में भी बौद्ध धर्म विशेष रूप से महायान और वज्रयान संप्रदाय को प्रोत्साहन मिला। मठों और महाविहारों के निर्माण में बौद्ध धर्म का प्रमुख प्रभाव था।
- समानता: दोनों कालों में बौद्ध धर्म की कला को राज्य संरक्षण प्राप्त था और धार्मिक प्रेरणा से कला का विकास हुआ।

2. स्थापत्य कला (Architecture):

- मौर्य काल: मौर्यकाल में स्तंभों और स्तूपों का निर्माण हुआ, जैसे कि अशोक के स्तंभ। इसके अलावा, बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भव्य स्तूप बनाए गए।
- पाल काल: पालकाल में भी बौद्ध धर्म से संबंधित महाविहार और मठ बनाए गए। नालंदा और विक्रमशिला जैसे प्रमुख महाविहारों का निर्माण इसी काल में हुआ।
- समानता: दोनों कालों में बौद्ध धार्मिक स्थलों, स्तूपों, और मठों का निर्माण हुआ था, जिनका उद्देश्य बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा देना था।

3. मूर्तिकला (Sculpture):

- मौर्य काल: मौर्यकाल में मूर्तिकला की उत्कृष्टता को देखा गया, जैसे कि दीदारगंज यक्षी मूर्ति और अशोक स्तंभों की नक्काशी। मूर्तियों में धार्मिक प्रतीक और मुद्राओं का चित्रण था।
- पाल काल: पाल काल में भी बौद्ध मूर्तियों का निर्माण हुआ, जो नर्म और भव्य थीं। कांस्य और पत्थर से बौद्ध देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाई गईं।
- समानता: दोनों कालों में बौद्ध धर्म से संबंधित मूर्तियों का निर्माण हुआ और इन मूर्तियों में ध्यान और ध्यानस्थ मुद्राएँ थीं।

4. कला का अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव (International Influence):

- मौर्य काल: मौर्य काल में कला का प्रभाव मध्य एशिया और ईरान तक फैल चुका था, जो सिल्क रूट के माध्यम से हुआ था।
- पाल काल: पाल काल में कला का प्रभाव तिब्बत, नेपाल और दक्षिण-पूर्व एशिया पर था।
- समानता: दोनों कालों में भारतीय कला का व्यापक प्रभाव एशियाई देशों पर पड़ा था, जिससे भारतीय कला परंपरा का प्रचार हुआ।

**असमानताएँ (Differences)**

1. काल और शासक (Period and Rulers):

- मौर्य काल: मौर्य काल में मुख्य रूप से सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य और सम्राट अशोक का शासन था (321-185 ईसा पूर्व)।
- पाल काल: पाल काल का शासन 8वीं से 12वीं शताबदी तक था और प्रमुख शासक धर्मपाल, देवपाल और महेन्द्रपाल थे।
- असमानता: मौर्य और पाल काल का समय अलग था, और प्रत्येक काल में शासन करने वाले शासक भी अलग थे।

2. स्थापत्य शैली (Architectural Style):

- मौर्य काल: मौर्यकाल में स्थापत्य कला में मुख्य रूप से स्तंभ, स्तूप और गुफाओं का निर्माण हुआ। इनकी सतह पर नक्काशी और पालिश की जाती थी।
- पाल काल: पालकाल में मुख्य रूप से महाविहारों और मठों का निर्माण हुआ, जिनमें बंगाली वास्तुकला का प्रभाव था। मंदिरों की छतें चाला शैली में बनाई जाती थीं और यह मंदिर मुख्य रूप से बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए बनाए गए थे।
- असमानता: मौर्यकाल में स्तंभ और स्तूपों का निर्माण था, जबकि पालकाल में महाविहार और मठों का निर्माण अधिक था।

3. कला का विकास और प्रवृत्तियाँ (Development and Trends in Art):

- मौर्य काल: मौर्यकाल में मूर्तिकला और स्थापत्य में विशेष रूप से प्रौद्योगिकी और तकनीकी उत्कृष्टता पर ध्यान दिया गया। मौर्यकाल की मूर्तियाँ अधिक समृद्ध और सजीव होती थीं।
- पाल काल: पालकाल में कला का ध्यान धार्मिक और धार्मिक प्रतीकों पर था। मूर्तियाँ और चित्रकला अधिक सौम्य और सरल थीं, जिनमें ध्यान और ध्यानस्थ मुद्राएँ प्रमुख थीं।
- असमानता: मौर्यकाल की मूर्तियाँ अधिक भव्य और जीवन्त थीं, जबकि पाल काल की मूर्तियाँ ध्यान और शांतिपूर्ण थीं।

4. धातुकला (Metal Art):

- मौर्य काल: मौर्यकाल में कांस्य और पत्थर से मूर्तियों का निर्माण हुआ, और इनकी प्रमुख विशेषता उनकी चमकदार और उत्कृष्ट पालिश थी।
- पाल काल: पालकाल में कांस्य और पीतल की मूर्तियों का निर्माण हुआ, जो अधिक नक्काशीदार और अलंकरणयुक्त होती थीं।
- असमानता: मौर्यकाल में मूर्तियाँ ज्यादातर साधारण थीं, जबकि पाल काल में मूर्तियों में ज्यादा सजावट और विस्तृत नक्काशी होती थी।

5. चित्रकला (Painting):

- मौर्य काल: मौर्य काल में चित्रकला का प्रमाण अत्यधिक सीमित था, लेकिन इसे मुख्य रूप से गुफाओं और दीवारों पर चित्रित किया जाता था।
- पाल काल: पाल काल में चित्रकला का विकास हुआ, जिसमें बौद्ध धर्म के धार्मिक दृश्य, देवी-देवता, और परिदृश्य चित्रित किए गए।

- असमानता: मौर्यकाल में चित्रकला का विकास कम था, जबकि पालकाल में चित्रकला को अत्यधिक महत्व दिया गया और इसका विस्तार हुआ।

निष्कर्ष

मौर्य कला और पाल कला दोनों ही भारतीय कला के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। जहाँ मौर्य कला का फोकस अधिक तकनीकी उत्कृष्टता और धार्मिक स्थलों के निर्माण पर था, वहीं पाल कला में धार्मिक प्रतीकों, बौद्ध धर्म के प्रचार और कला के सौम्य रूपों पर जोर दिया गया। दोनों कालों में कला का प्रभाव अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर फैला, लेकिन उनके निर्माण में शैली और उद्देश्य में स्पष्ट अंतर था।

## b. पटना कलम शैली के उद्भव, प्रमुख विशेषताओं एवं इसके पतनो–मुख होने के कारकों को बताइए। साथ ही इसके सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोणों की संक्षिप्त चर्चा कीजिए।

पटना कलम शैली को इंडो-ब्रिटिश चित्रकला के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि इसमें फारसी, मुगल और ब्रिटिश तीनों ही कला शैलियों का मेल शामिल है। इस चित्रकला का विकास मुगल काल के पतन के दौरान तब हुआ जब चित्रकारों को मुगल दरबार में प्रश्रय देना बंद कर दिया गया। तत्पशचात् यह चित्रकार दरबार छोड़कर जीविकोपार्जन हेतु अलग-अलग क्षेत्रों में गए। इन्ही में से एक दल पूर्वी भारत की ओर आया और पहले मुर्शिदाबाद के नवाबों के यहां आश्रय ग्रहण किया परंतु 1757 में हुए बंगाल के अशांति के बाद 1760 के आस-पास यह चित्रकार पटना आ गए। उन दिनों पटना एक विकसित औद्योगिक नगर था जहां के आम लोग कला प्रेमी थे। कुछ चित्रकार पटना से होते हुए आरा और काशी ओर भी गए पटना में बसे इन चित्रकारों ने यहां स्थानीय रूप से जिस चित्रकारी को विकसित किया उसे पटना कलम के नाम से जाना जाता है। इन चित्रों में स्थानीय जीवन, दैनिक जन जीवन, लोक संस्कृति का चित्रण के साथ-साथ व्यवसायिक दृष्टि से भी कई चित्र बनाये गए। कुछ व्यवसायिक चित्रकार स्थानीय जमींदारों नवाबों अंग्रेज सैनिकों और अधिकारियों के इच्छा अनुरूप चित्रण करते थें।

**पटना कलम कला की प्रमुख विषेशताएँ-**

- पटना कलम के चित्र लघु चित्रकला के श्रेणी के हैं, जिन्हें कागज, हाथी दांत, अभ्रक, चमड़ें, तांत, कपड़ों तथा अन्य धातुओं पर चित्रित किया जाता था।
- कागज पर बनने वाले चित्र नेपाल से आयातित बांस के कागज पर बनाये गए एवं कागज को चिपकाने के लिए मैदे की लोई का प्रयोग किया जाता था।
- अभ्रक पर की गई चित्रकारी को प्रकाश के साथ देखने पर चित्रों में अतुलनीय सुंदरता दिखाई पड़ती है।
- यह चित्रकला जनकला और जनअभिव्यक्ति के कला के रूप में प्रचलित थी, क्योंकि चित्रकार एवं चित्र के विषय आम जनता थे।

चित्रण करने हेतु कुंची का इस्तेमाल होता था जो चित्रकारों द्वारा स्वयं गिलहरी के बाल या घोड़े के गर्दन के बाल से तैयार किया जाता था। इसे इस्तेमाल करने के लिए पक्षियों के पंख का भी प्रयोग शामिल था। चित्रकार रंग भी स्वयं ही बनाते थें जो खनिजों, प्राकृतिक माध्यम से फल, फूल, वृक्ष के छाल के रस से निकाले जाते थे।

इसमें दैनिक जीवन, वाले विषय प्रधान चित्र वाले शामिल है जिसमें लकड़ी काटता व्यक्ति, मछली बेचती महिलायें, खेती करता किसान, भिश्ती, दाढ़ी बनाता हुआ नाई, शादी-विवाह, हाट-बाजार आदि का चित्रण किया गया है।

इस चित्रकला में पृष्ठभूमि एवं लैंडस्केप का काफी प्रयोग हुआ है। अधिकांश पृष्ठभूमि सफेद है। जबकि मुगल चित्रकला की पृष्ठभूमि काफी नक्कशीदार हुआ करती थी।

मनुष्य के चित्रों में ऊँची नाक, मोटी भौंह, गहरी आंखें, पतले चेहरें, घनी मूंछों को दर्शाया गया है।

इस चित्रकला में जीवंतता दिखाई पड़ती है, क्योंकि पशु-पक्षियों का इस रूप में चित्रण है कि चित्रकारों को इनकी आकारिकी के गहन जानकारी हों।

चित्रकार चित्र बनाने में एक लंबा वक्त लिया करते थे क्योंकि चित्र किए जाने वाले विषयों का रेखांकन गर्मी के मौसम में किया जाता था। रंग बनाने का काम बरसात में तो वही रंग भरने का काम जाड़े के दिनों में किया जाता था।

कुछ चित्रों में बॉर्डर रेखांकन भी देखने को मिलता है।

**प्रमुख चित्रकार-**

- सेवक राम
- हुलास लाल
- जयराम दास

कुछ महिला चित्रकारों के भी नाम हमें देखने को मिलते है जिसमें सोना बीबी और दक्षों बीबी शामिल है। अंग्रेजी व्यापारी चार्ल्स डी आइल ने 1860 के दशक में पटना में लिथोप्रेस की स्थपना की थी जहां पटना कलम के चित्रों की प्रतिकृति की छपाई कर चित्रों को विदेशों में भेजा गया।

ईश्वरी प्रसाद इस चित्रकला के अंतिम प्रतिनिधि थे। इस चित्रकारी को बिहार से बंगाल ले जाने का श्रेय ईश्वरीय प्रसाद को ही दिया जाता है। 1960 में इनकी मृत्यु के बाद पटना में इस कला का लोप हो गया।

**पटना कलम के प्रसिद्ध चित्र-**

- महादेवलाल कृत रागनीगंधारी
- माधवलाल कृत विरहनीनायिका
- गोपाललाल कृत होली चित्रण
- ईश्वरी प्रसाद रचित भारत माता का चित्र

वर्तमान में इन चित्रों को पटना म्यूजियम आर्ट कॉलेज, खुदा बख्श लाइब्रेरी में संग्रहित एवं सुरक्षित रखा गया है।

बिहार सरकार ने इस कला के पुनर्जीवित हेतु 2010 में एक कैलेंडर भी जारी किया है।

**इस चित्रकला के पतन के कारण-**

- चित्रों की पुनरावृति का होना
- विदेशी सैलानियों का पटना आवागमन कम होना
- लिथोप्रेस की बढ़ती संख्या एवं कैमरे का अविष्कार
- पेशेवर कलाकारों की कमी
- राजकीय संरक्षण का अभाव

## पटना कला की सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोण से विश्लेषण

### सामाजिक दृष्टिकोण:

1. **सामाजिक जीवन और चित्रण:**

- पटना कला में सामान्य जीवन के दृश्य, त्योहारों, सामाजिक समारोहों, किसानों, व्यापारी वर्ग, शाही दरबार, और शिकार के दृश्य चित्रित किए जाते थे।
- चित्रकारों ने समाज के विभिन्न वर्गों और उनकी जीवनशैली को सजीव रूप से दर्शाया, जिसमें महिलाओं का चित्रण भी महत्वपूर्ण था।
- इस चित्रकला शैली ने समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक, और राजनीतिक पहलुओं को प्रस्तुत किया, जैसे हिंदू देवी-देवताओं, धार्मिक अनुष्ठानों, और राजा-महाराजाओं के दरबारों का चित्रण।

2. **शहरीकरण और सामाजिक परिवर्तन:**
   - ब्रिटिश साम्राज्य के तहत पटना और अन्य प्रमुख शहरों में शहरीकरण की प्रक्रिया तेज हुई। यह सामाजिक परिवर्तन भी चित्रकला में परिलक्षित हुआ। शहरों में नए सामाजिक वर्गों का उदय हुआ, और चित्रकला में शहरी जीवन, बाग-बगिचों, घरों, बाजारों और सार्वजनिक स्थलों का चित्रण हुआ।
   - चित्रों में व्यापारिक गतिविधियों, व्यापारियों और उनके कामकाजी जीवन को दर्शाया गया, जो उस समय के सामाजिक परिवर्तनों का संकेत था।
3. **धार्मिक और सांस्कृतिक विचार:**
   - पटना कला में हिंदू धर्म, इस्लामिक कला और ब्रिटिश शैलियों का मिश्रण था, जो सामाजिक और धार्मिक विविधता को दर्शाता था। इस मिश्रण ने कला को एक धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अधिक समृद्ध किया।
   - चित्रकला में धार्मिक मंदिरों, मस्जिदों, और अन्य धार्मिक स्थलों का चित्रण हुआ, जिससे समाज में धार्मिक विविधता की झलक मिलती थी।

**आर्थिक दृष्टिकोण:**

1. **पटना कला और व्यापार:**
   - पटना कला ने व्यापारिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस कला के चित्रों की स्थानीय और अंतरराष्ट्रीय बाजारों में भारी मांग थी। पटना कला की पेंटिंग्स ब्रिटिश व्यापारियों और भारतीय नबाबों के बीच एक लोकप्रिय वस्तु बन गईं, और इन चित्रों का व्यापार हुआ।
   - कला कार्यों की मांग ने चित्रकारों को वित्तीय लाभ प्रदान किया, जिससे उन्होंने कला के नए रूप और शैलियाँ विकसित कीं। चित्रकला के इस व्यापार से शहर की अर्थव्यवस्था को भी लाभ हुआ।
2. **कला और साम्राज्यवादी प्रभाव:**

- ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान, चित्रकला का उपयोग साम्राज्यवादी प्रभाव फैलाने के लिए भी किया गया था। अंग्रेजों ने अपनी शक्ति और समाज के विकास को चित्रित किया, जबकि भारतीय चित्रकारों ने इसे अपनी शैली में अभिव्यक्त किया। यह काव्यात्मक चित्रण समाज की स्थिति और उनके सत्तात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है।
- यह चित्रकला समाज के विभिन्न आर्थिक वर्गों के बीच संपर्क को बढ़ावा देने का एक माध्यम बन गई, और आर्थिक बदलावों को चित्रित करने में सहायक हुई।

3. **पटना कला के केंद्र और आर्थिक योगदान:**
   - पटना कला के केंद्र, जैसे पटना शहर और आसपास के क्षेत्र, चित्रकला उद्योग के महत्वपूर्ण केंद्र बन गए थे। ये केंद्र कला, व्यापार और आर्थिक गतिविधियों का मिलाजुला स्थान थे, जहाँ कलाकारों को आर्थिक सुरक्षा और अवसर मिला।
   - कलाकारों और चित्रकारों का जीवन स्तर, जिनमें से कई आमतौर पर गरीब या मध्यम वर्ग से आते थे, व्यापारिक गतिविधियों और कला से जुड़े आर्थिक योगदानों के कारण बेहतर हुआ।

**निष्कर्ष-**

स्पष्ट है कि यह चित्रकला जनजीवन का सजीव चित्रण किया करती थी और इसका संरक्षण आगामी भारतीय चित्रकला के विकास हेतु आधार प्रदान करेगा। परंतु कल की स्वर्णिम अतीत को फिर से जीवित करने और प्रोत्साहित करने की अत्यंत आवश्यकता है।

## 4.a मधुबनी चित्रकला

**मधुबनी चित्रकला**

1. उत्पत्ति (Origin of Madhubani Painting):

मधुबनी पेंटिंग, जिसे मिथिला पेंटिंग भी कहा जाता है, बिहार राज्य के मिथिला क्षेत्र से उत्पन्न हुई थी। यह कला रूप सदियों पुराना है और इसे मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा धार्मिक अवसरों, त्योहारों, और विवाह समारोहों में घरों की दीवारों को सजाने के लिए किया जाता था। इस कला का उल्लेख भारतीय महाकाव्य "रामायण" में भी मिलता है, जब राजा जनक ने सीता के विवाह के लिए इस प्रकार की पेंटिंग का आदेश दिया था।

मधुबनी पेंटिंग की शुरुआत दीवारों पर प्राकृतिक रंगों से होती थी, लेकिन 1960 के दशक में यह कला रूप कागज और कपड़े पर लोकप्रिय होने लगी।

मधुबनी पेंटिंग की खोज (Discovery of Madhubani Painting):

मधुबनी पेंटिंग का इतिहास सदियों पुराना है और इसे मिथिला क्षेत्र की पारंपरिक कला के रूप में माना जाता है। यह कला बिहार राज्य के मिथिला क्षेत्र, विशेष रूप से दरभंगा, मधुबनी, और सहरसा जिलों से संबंधित है। हालांकि,

मधुबनी पेंटिंग का औपचारिक "खोज" 1930 के दशक के आसपास हुआ, जब इस कला रूप को बाहर की दुनिया में पहचान मिली।

मधुबनी चित्रकला का स्वरूप और प्रमुख विशेषताएँ (Form and Key Features of Mithila Painting) :

स्वरूप (Form):

मधुबनी चित्रकला (जिसे मधुबनी पेंटिंग भी कहा जाता है) बिहार राज्य के मिथिला क्षेत्र की पारंपरिक चित्रकला है। यह मुख्य रूप से महिलाओं द्वारा की जाती है और उनके घरों, दीवारों, आंगनों और धार्मिक स्थानों पर चित्रित की जाती है। इस कला में मुख्य रूप से धार्मिक, सांस्कृतिक और पारंपरिक विषयों को चित्रित किया जाता है। पहले यह पेंटिंग प्राकृतिक रंगों, मिट्टी, चॉक, और वनस्पति तत्वों से बनाई जाती थी, लेकिन अब इसे कागज, कपड़ा और कैनवास पर भी चित्रित किया जाता है।

प्रमुख विशेषताएँ (Key Features):

1. सजावटी और जटिल डिजाइन (Decorative and Intricate Designs):

- मिथिला पेंटिंग की सबसे प्रमुख विशेषता उसकी जटिल और सजावटी डिज़ाइन है। इसमें ज्यामितीय रूप, लहराते हुए रेखाएँ, फूल-पत्तियाँ, जानवरों और मानव आकृतियों की सजीव चित्रण की विशेषता है।
- इस कला में अक्सर डिजाइन इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें बिना किसी आधुनिक उपकरण के सिर्फ हाथों से बनाया जाता है। चित्रों में कड़ी और स्पष्ट सीमाएँ होती हैं।

2. प्राकृतिक रंगों का प्रयोग (Use of Natural Colors):

- पारंपरिक मिथिला पेंटिंग में रंगों का इस्तेमाल प्राकृतिक सामग्री से किया जाता था, जैसे मिट्टी, फूल, पौधे, और खनिज। इन रंगों में प्रमुख रूप से लाल, पीला, हरा, नीला और काले रंग होते हैं।
- आजकल आधुनिक रंगों का भी उपयोग किया जाता है, लेकिन पारंपरिक रूप में इन रंगों का प्राकृतिक स्रोत ही मुख्य था।

3. धार्मिक और सांस्कृतिक चित्रण (Religious and Cultural Depictions):

- मिथिला पेंटिंग में मुख्य रूप से हिंदू धर्म से संबंधित धार्मिक चित्रण होते हैं, जैसे भगवान श्रीराम, देवी सीता, कृष्ण, शिव और गणेश। यह चित्र विशेष रूप से विवाह, त्योहारों और धार्मिक अनुष्ठानों से जुड़े होते हैं।
- चित्रों में महाभारत, रामायण और अन्य प्राचीन भारतीय ग्रंथों के दृश्य होते हैं, जैसे देवी-देवताओं का चित्रण, और पारंपरिक मिथकीय कथाएँ।

4. प्राकृतिक और पारिस्थितिकीय तत्व (Nature and Ecological Elements):

- इस कला में प्राकृतिक तत्वों का भी चित्रण किया जाता है, जैसे फूलों, पत्तियों, पक्षियों, जानवरों, मछलियों और पेड़ों का उपयोग। यह कला प्रकृति के प्रति प्रेम और आस्था को दर्शाती है।
- चित्रों में बहुत सारे जीव-जंतु और वन्यजीवों का चित्रण किया जाता है, जो मिथिला क्षेत्र की सांस्कृतिक धरोहर और पर्यावरण के प्रति सम्मान को दर्शाते हैं।

5. ज्यामितीय रूप (Geometric Shapes):

- मिथिला पेंटिंग में ज्यामितीय आकारों का खूब प्रयोग किया जाता है, जैसे तिकोने, वृत्ताकार, और बेलनाकार डिजाइन। इन रूपों का उपयोग चित्रों को और अधिक आकर्षक और संरचित बनाने के लिए किया जाता है।

- डिजाइन का पैटर्न नियमित होता है और इसे आकारों की सही व्यवस्था से एक खास प्रभाव उत्पन्न किया जाता है।

6. उल्लेखनीय चित्रकला शैली (Distinctive Art Style):

- मिथिला पेंटिंग की विशिष्टता उसकी रंगीन और विस्तृत रेखाओं में है, जो चित्र को एक प्रकार की दृश्य गहराई प्रदान करती है। इन पेंटिंग्स में बहुत कम शेडिंग और हाइलाइट्स होते हैं, और यह ज्यादातर फ्लैट और उज्ज्वल रंगों में होती है।

7. सामाजिक और पारिवारिक दृश्य (Social and Domestic Scenes):

- मिथिला पेंटिंग में पारिवारिक और सामाजिक जीवन की भी छायाएँ दिखाई जाती हैं, जैसे विवाह समारोह, त्योहारों के दृश्य, और गांवों के जीवन के विभिन्न पहलु।
- इस प्रकार के चित्रणों में महिलाएँ, बच्चों और आम ग्रामीणों के जीवन के चित्रण किए जाते हैं।

**मधुबनी चित्रकला के कुछ विशिष्ट उपशैलियां है-**

- भरनी- इसमें रंगों का व्यापक प्रयोग किया जाता है तथा चित्रों के प्रमुख विषय के रूप में रामायण एवं महाभारत के विषय शामिल है।
- कचनी- इसमें रंगों का प्रयोग सीमित होता है तथा रेखाओं एवं स्कैच का इस्तेमाल किया जाता है।
- तांत्रिक- इसके मुख्य विषय देवी एवं देवताओं के चित्रण से जुड़ा होता है।
- गोदना- इसके मुख्य विषय में प्राकृतिक वस्तुओं का चित्रांकन किया जाता है।
- कोहबर- इसमें शारीरिक चित्रण किया जाता है साथ ही मछली, कमल, हंस आदि का चित्रण होता है। इसकी एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें कामुकता भरे चित्रों का प्रदर्शन किया जाता है।

**मधुबनी पेंटिंग के प्रमुख चित्रकार और चित्र-**

**प्रमुख चित्रकार (Key Artists):**

1. बिहार के महेन्द्र यादव (Madhubani Painting): महेन्द्र यादव को मधुबनी पेंटिंग के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण कलाकार माना जाता है। वे पारंपरिक रूप से एक गांव में रहते थे और उनकी चित्रकला में प्रकृति, धार्मिक और सामाजिक तत्व प्रमुख थे। उन्होंने इस कला को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध किया।

2. भीम सिंह (Bhima Singh): भीम सिंह एक और प्रमुख कलाकार थे जिन्होंने मधुबनी पेंटिंग की परंपरा को आगे बढ़ाया। उनके चित्रों में भव्य धार्मिक विषयों और विस्तृत ज्यामितीय रूपों का प्रयोग किया जाता था। उनके चित्रकों में देवी-देवताओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं का सुंदर चित्रण होता था।

3. जयमंगल देव (Jai Mangla Dev): जयमंगल देव एक प्रमुख चित्रकार थे जिन्होंने इस कला को नई दिशा दी। उनके चित्रों में पारंपरिक तकनीकों के साथ-साथ आधुनिक शैली का भी प्रभाव दिखता है। वे खासतौर पर कागज और कपड़े पर मधुबनी पेंटिंग बनाते थे।

4. सुहिता देवी (Suhita Devi): सुहिता देवी मधुबनी पेंटिंग की प्रसिद्ध महिला चित्रकार हैं। उन्होंने अपने चित्रों में हिन्दू धर्म के धार्मिक विषयों और ग्रामीण जीवन के दृश्य प्रस्तुत किए। उनके चित्रों में पेड़, फूल, और भगवान की पूजा का चित्रण होता था।

5. गोविंद झा (Govind Jha): गोविंद झा एक और प्रमुख चित्रकार थे जिन्होंने अपने चित्रों में पारंपरिक पद्धतियों को नया रूप दिया। उन्होंने अपनी कला में मिथिला के जीवन, संस्कृति और समाज को खूबसूरती से चित्रित किया।

6. नन्दा देवी (Nanda Devi): नन्दा देवी भी मधुबनी पेंटिंग के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण नाम हैं। उनकी पेंटिंग्स ने बहुत सारा ध्यान आकर्षित किया है, खासकर उनके चित्रों में देवी-देवताओं का चित्रण।

**प्रमुख चित्र (Famous Paintings):**

1. "राम-सीता विवाह" (Ram-Sita Wedding): यह चित्र हिंदू धर्म के प्रमुख प्रसंग रामायण से संबंधित है। इस चित्र में भगवान राम और देवी सीता के विवाह के दृश्य को बहुत ही खूबसूरत और विस्तृत रूप से चित्रित किया गया है। इस चित्र में विवाह के धार्मिक अनुष्ठान, परिजनों और अन्य रिश्तेदारों के चित्रण किए गए हैं।

2. "शिव-पार्वती विवाह" (Shiva-Parvati Wedding): यह एक प्रसिद्ध चित्र है जिसमें भगवान शिव और देवी पार्वती के विवाह को दर्शाया गया है। इस चित्र में देवताओं के साथ-साथ पारंपरिक साज-सज्जा और रंगों का बेहतरीन प्रयोग किया गया है।

3. "कृष्ण लीला" (Krishna Leela): कृष्ण लीला पर आधारित यह चित्र भगवान श्री कृष्ण की बाल लीलाओं का चित्रण करता है। इसमें कृष्ण का रासलीला, गोवर्धन पर्वत उठाने का दृश्य और उनकी अन्य बाल लीलाएँ दिखायी जाती हैं।

4. "गणेश पूजा" (Ganesha Puja): यह चित्र भगवान गणेश की पूजा को दर्शाता है। इसमें गणेश जी के साथ पूजा अर्चना के विभिन्न चरणों का चित्रण किया गया है। यह चित्र धार्मिक और सांस्कृतिक रूप से महत्वपूर्ण है।

5. "नवविवाहिता की पूजा" (Newlywed Woman's Worship): इस चित्र में एक नवविवाहिता महिला का पूजन करते हुए चित्रित किया गया है। यह चित्र पारंपरिक मिथिला संस्कृति और महिला सशक्तिकरण को दर्शाता है।

6. "प्रकृति और जीवन" (Nature and Life): इस चित्र में प्रकृति और ग्रामीण जीवन को दर्शाया गया है। इसमें पेड़-पौधे, पक्षी, पशु, और नदियों का सुंदर चित्रण किया गया है, जो मिथिला की प्राकृतिक सुंदरता को दर्शाता है।

**मधुबनी पेंटिंग की प्रासंगिकता (Relevancy of Madhubani Painting):**

मधुबनी पेंटिंग, जो मिथिला क्षेत्र (बिहार) की पारंपरिक कला है, आज भी भारतीय कला की प्रमुख धारा बनी हुई है। इस कला की प्रासंगिकता समय के साथ और भी बढ़ी है, खासकर इसके समकालीन युग में, क्योंकि:

- सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व: मधुबनी पेंटिंग में मुख्य रूप से धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विषयों का चित्रण होता है। जैसे भगवान राम, कृष्ण, शिव, पार्वती, गणेश, दुर्गा, और अन्य देवताओं के चित्रण, विवाह, पूजा, और जीवन के विभिन्न पहलुओं का प्रस्तुतीकरण इस कला को भारतीय संस्कृति से जोड़ता है।
- प्राकृतिक और पारंपरिक कला की सहेजना: आधुनिकता की ओर बढ़ते समाज में, पारंपरिक कला रूपों की धीरे-धीरे उपेक्षा हो रही थी। मधुबनी पेंटिंग ने इस पारंपरिक कला को संरक्षित करने में मदद की है और यह आज भी अपने कागज, कपड़े, दीवारों और अन्य सतहों पर जीवित है।
- सामाजिक सशक्तिकरण: खासकर महिलाएँ, जो इस कला में पारंगत हैं, अपनी रचनाओं के माध्यम से न केवल खुद को एक सशक्त पहचान देती हैं, बल्कि उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता भी मिलती है। यह कला महिलाओं के लिए रोजगार का भी एक प्रमुख स्रोत बन चुकी है।
- आधुनिकता के साथ सामंजस्य: जबकि मधुबनी पेंटिंग पारंपरिक कला रूप है, यह समकालीन दुनिया में भी बेहद प्रासंगिक है। डिज़ाइनर्स और कलाकार इस कला को आधुनिक कला रूपों में सम्मिलित कर रहे हैं। मधुबनी चित्रों को फैशन, गहनों, घर के सजावट के सामानों में भी इस्तेमाल किया जाता है, जिससे इस कला का विस्तार हुआ है।

- सभी आयु वर्ग के लोगों के लिए आकर्षक: मधुबनी पेंटिंग का आकर्षण न केवल भारतीयों में बल्कि वैश्विक स्तर पर है। यह कला न केवल पारंपरिक रूप में बल्कि आधुनिक डिजाइन और कला के रूप में भी पसंद की जाती है। छोटे बच्चों से लेकर बुजुर्गों तक, यह कला लोगों को आकर्षित करती है।

**मधुबनी पेंटिंग की वैश्विक पहचान (Global Recognition of Madhubani Painting):**

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार: मधुबनी पेंटिंग को भारत में और विदेशों में कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। भारतीय प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति भी इस कला को बढ़ावा देने के लिए कई बार इसे राष्ट्रीय मंचों पर प्रस्तुत कर चुके हैं। 2018 में, प्रसिद्ध कलाकार बीके निराला और भागमती देवी जैसे प्रमुख कलाकारों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान प्राप्त हुआ है।

यूनाइटेड नेशंस और अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठन: मधुबनी पेंटिंग को संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी वैश्विक संस्थाओं द्वारा कला और संस्कृति के रूप में सम्मानित किया गया है। इन संस्थाओं के माध्यम से मधुबनी पेंटिंग का प्रचार-प्रसार दुनिया भर में किया गया है।

फैशन और डिज़ाइन इंडस्ट्री में लोकप्रियता: आजकल, मधुबनी पेंटिंग को विभिन्न फैशन डिज़ाइन और वस्त्र उद्योग में भी बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जाता है। भारतीय और अंतर्राष्ट्रीय डिजाइनरों ने अपनी कलेक्शन्स में मधुबनी पेंटिंग को शामिल किया है, जो इसे एक वैश्विक पहचान प्रदान कर रहा है।

ऑनलाइन प्लेटफार्म और सोशल मीडिया: इंटरनेट और सोशल मीडिया प्लेटफार्मों (जैसे इंस्टाग्राम, फेसबुक) ने मधुबनी पेंटिंग को एक वैश्विक मंच प्रदान किया है। अब पूरी दुनिया से लोग इस कला को देख और सराह सकते हैं, और इसे विभिन्न उत्पादों में जोड़ने के लिए प्रेरित हो सकते हैं।

मूल्यांकन और संरक्षण: वैश्विक कला बाजार में मधुबनी पेंटिंग को काफ़ी मांग बढ़ी है। कला के संग्रहकर्ता इस पेंटिंग को एक उत्कृष्ट कला रूप मानते हैं और इसके संरक्षण में भी भारी निवेश हो रहा है।

**निष्कर्ष (Conclusion):**

मधुबनी पेंटिंग आज न केवल भारतीय कला के इतिहास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, बल्कि यह वैश्विक पहचान भी प्राप्त कर चुकी है। यह कला अपने पारंपरिक रूप, रंग-बिरंगे डिज़ाइन और धार्मिक तथा सांस्कृतिक संदर्भों के साथ दुनिया भर में एक महत्वपूर्ण स्थान बना चुकी है। आधुनिक डिज़ाइन और फैशन में भी इसका योगदान बढ़ रहा है, और इसके प्रचार-प्रसार के लिए सरकारी, सामाजिक और डिजिटल मंचों का उपयोग हो रहा है। इस प्रकार, मधुबनी पेंटिंग न केवल भारतीय कला की धरोहर है, बल्कि अब एक अंतर्राष्ट्रीय पहचान भी बन चुकी है।

## b.राष्ट्रीय आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और बहुआयामी रही है। प्रारंभ में यह भूमिका सीमित थी, लेकिन 20वीं शताब्दी में महिलाओं ने संगठित रूप से स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। उन्होंने सामाजिक सुधार आंदोलनों से लेकर सशस्त्र संघर्षों और अहिंसक आंदोलनों में योगदान दिया।

महिलाओं की भागीदारी के प्रमुख चरण

**1. प्रारंभिक चरण (1857 से पहले)**

• इस काल में महिलाओं की भूमिका मुख्यतः सामाजिक सुधार आंदोलनों तक सीमित थी।

• राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर और अन्य समाज सुधारकों के प्रयासों से महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक अधिकारों की दिशा में सुधार हुआ।

• रानी लक्ष्मीबाई (1857 का विद्रोह) – झांसी की रानी ने ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ वीरतापूर्वक संघर्ष किया और प्रेरणा बनीं।

**2. 1857 का विद्रोह और महिलाओं की भूमिका**

• बेगम हजरत महल – लखनऊ में ब्रिटिश शासन के खिलाफ संग्राम किया।

• झलकारी बाई – झांसी की रानी की सहयोगी और अंग्रेजों के खिलाफ लड़ीं।

• अवध की बेगम – अवध क्षेत्र में विद्रोह को संगठित करने में अहम भूमिका निभाई।

3. 20वीं शताब्दी में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी

• इस काल में महिलाओं की भूमिका अहिंसक आंदोलनों और सामाजिक सुधारों में बढ़ी।

• महात्मा गांधी के नेतृत्व में महिलाएं राष्ट्रीय आंदोलन का सक्रिय हिस्सा बनीं।

**(क) असहयोग आंदोलन (1920-22)**

• गांधीजी के आह्वान पर हजारों महिलाओं ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया और चरखा चलाकर स्वदेशी को अपनाया।

• सरला देवी चौधरानी, वीरकुमारी चटोपाध्याय, कस्तूरबा गांधी जैसी महिलाओं ने इस आंदोलन में भाग लिया।

**(ख) सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-34)**

• दांडी यात्रा (1930) – महिलाओं ने नमक सत्याग्रह में भाग लिया।

• कमला देवी चट्टोपाध्याय, सुभद्रा कुमारी चौहान, मैडम भीकाजी कामा जैसी महिलाओं ने आंदोलन को मजबूती दी।

• महिला स्वयंसेविकाएं – हजारों महिलाओं ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ सत्याग्रह किया।

**(ग) भारत छोड़ो आंदोलन (1942)**

• इस आंदोलन में महिलाओं ने अभूतपूर्व भागीदारी दिखाई।

• अरुणा आसफ अली – उन्होंने 1942 में मुंबई के गोवालिया टैंक मैदान में तिरंगा फहराया और आंदोलन को नेतृत्व दिया।

• सुचेता कृपलानी – भूमिगत गतिविधियों में शामिल होकर ब्रिटिश सरकार का विरोध किया।

• उषा मेहता – गुप्त रेडियो सेवा के माध्यम से आंदोलन को प्रचारित किया।

**4. क्रांतिकारी आंदोलन और महिलाओं की भूमिका**

• मैडम भीकाजी कामा – उन्होंने पेरिस में भारतीय स्वतंत्रता का झंडा फहराया और क्रांतिकारी गतिविधियों में सहयोग दिया।

• कल्पना दत्त और प्रीतिलता वाडेकर – चटगांव शस्त्रागार विद्रोह (1930) में भाग लिया।

• दुर्गा भाभी – भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद की सहयोगी रहीं।

• बिनोदिनी दास, सुशीला दीदी – गुप्त गतिविधियों में भागीदारी।

**5. भारतीय राष्ट्रीय सेना (INA) में महिलाओं की भूमिका**

• नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने रानी लक्ष्मीबाई रेजिमेंट की स्थापना की, जिसका नेतृत्व कप्तान लक्ष्मी सहगल ने किया।

• इस रेजिमेंट की महिलाओं ने अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष किया।

• बिहार की महिलाओं की स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी

**1. असहयोग आंदोलन (1920-22) में महिलाओं की भूमिका**

• महात्मा गांधी के नेतृत्व में बिहार में असहयोग आंदोलन ने महिलाओं को पहली बार संगठित रूप से स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने का अवसर दिया।

• अनुग्रह नारायण सिंह की पत्नी जमुना देवी और राबिया खातून ने इस आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।

• महिलाओं ने विदेशी वस्त्रों और शराब के विरोध में आंदोलन किया।

• उन्होंने अपने गहने और संपत्ति तक राष्ट्रीय आंदोलन के लिए दान कर दिए।

**2. सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-34) और बिहार की महिलाएँ**

• इस आंदोलन में बिहार की महिलाओं ने नमक सत्याग्रह, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और ब्रिटिश कानूनों के उल्लंघन में बढ़-चढ़कर भाग लिया।

• सरला देवी, पूर्णिमा बनर्जी, मालती चौधरी, सुभद्रा देवी, ज्योतिरी देवी जैसी महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई।

• मालती चौधरी गांधीजी के विचारों से प्रभावित थीं और उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में आंदोलन को संगठित किया।

• सरला देवी और अन्य महिलाओं ने पटना, मुजफ्फरपुर और भागलपुर में सत्याग्रह का नेतृत्व किया।

• महिलाओं ने नमक सत्याग्रह और जंगल सत्याग्रह में भाग लिया।

**3. भारत छोड़ो आंदोलन (1942) में बिहार की महिलाओं की भूमिका**

• 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में बिहार की महिलाओं ने अंग्रेजी शासन के खिलाफ साहसिक प्रदर्शन किए।

• जयप्रकाश नारायण की पत्नी प्रभावती देवी इस आंदोलन में सक्रिय थीं और उन्होंने युवाओं को प्रेरित किया।

• कांति देवी ने पटना और गया में आंदोलन का नेतृत्व किया।

• उषा सिन्हा और वीणा गुप्ता ने भूमिगत आंदोलन में भाग लिया और क्रांतिकारियों की सहायता की।

• बिहार के विभिन्न जिलों में महिलाओं ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ प्रदर्शन किए और जेल यात्राएं कीं।

### 4. क्रांतिकारी आंदोलन और बिहार की महिलाएँ

• बिहार की महिलाओं ने केवल अहिंसक आंदोलन में ही नहीं, बल्कि सशस्त्र क्रांतिकारी गतिविधियों में भी भाग लिया।

• सुशीला देवी और विद्यावती देवी जैसी महिलाओं ने क्रांतिकारियों की सहायता की और गुप्त बैठकों का आयोजन किया।

• कुंती देवी ने भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान भूमिगत गतिविधियों में हिस्सा लिया।

### 5. अखिल भारतीय महिला आंदोलन और बिहार की भूमिका

• बिहार की महिलाओं ने अखिल भारतीय महिला आंदोलन में भी भाग लिया।

• मालती चौधरी, प्रभावती देवी, ज्योति देवी और अन्य महिलाओं ने महिलाओं की शिक्षा और सशक्तिकरण के लिए कार्य किया।

• उन्होंने महिला कांग्रेस की स्थापना में भी योगदान दिया और ग्रामीण क्षेत्रों में स्वतंत्रता संग्राम को आगे बढ़ाया।

### बिहार की प्रमुख महिला स्वतंत्रता सेनानी

**प्रभावती देवी** - जयप्रकाश नारायण की पत्नी, महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा।

**मालती चौधरी** - गांधीवादी विचारों से प्रभावित, बिहार में सत्याग्रह और शिक्षा के क्षेत्र में योगदान।

**सरला देवी** - 1930 के नमक सत्याग्रह में सक्रिय भूमिका निभाई।

**कांति देवी** - भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लिया और जेल गईं।

**उषा सिन्हा** - क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लिया, भूमिगत आंदोलन में सहयोग दिया।

**रमेश्वरी नेहरू** - बिहार में महिलाओं को संगठित कर स्वतंत्रता आंदोलन में प्रेरित किया।

**सुभद्रा देवी** - स्वतंत्रता संग्राम में बिहार की महिलाओं को संगठित किया।

**वीणा गुप्ता** - 1942 के आंदोलन में भूमिगत गतिविधियों में भाग लिया।

### महिलाओं की भूमिका का मूल्यांकन

1. सकारात्मक पक्ष

- सक्रिय भागीदारी – महिलाओं ने अहिंसक और हिंसक दोनों आंदोलनों में भाग लिया।
- संगठन क्षमता – महिलाओं ने कांग्रेस और क्रांतिकारी दलों के आंदोलनों को संगठित किया।

- स्वतंत्रता के बाद प्रेरणा स्रोत – स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी से महिलाओं को आगे बढ़ने का अवसर मिला और यह महिला सशक्तिकरण का आधार बनी।

2. चुनौतियाँ और सीमाएँ

- प्रत्यक्ष नेतृत्व की कमी – राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी तो थी, लेकिन वे शीर्ष नेतृत्व में कम दिखाई दीं।
- सामाजिक बाधाएँ – भारतीय समाज में परंपराओं और पुरुषसत्तात्मक मानसिकता के कारण महिलाओं को पूरी स्वतंत्रता नहीं मिली।
- राजनीतिक प्रतिनिधित्व की कमी – स्वतंत्रता के बाद भी महिलाओं की भागीदारी सीमित रही।

निष्कर्ष

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही। प्रारंभ में वे सामाजिक सुधारों तक सीमित थीं, लेकिन 20वीं शताब्दी में उन्होंने राजनीतिक आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी की। उनकी भूमिका ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम को मजबूत किया, बल्कि स्वतंत्र भारत में महिलाओं के उत्थान का मार्ग भी प्रशस्त किया।

## c.नील विद्रोह का सामाजिक–राजनीतिक प्रभाव

नील विद्रोह (1859-1860) भारतीय किसानों द्वारा ब्रिटिश नील व्यापारियों के शोषण और जबरन नील की खेती के खिलाफ किया गया पहला बड़ा संगठित विद्रोह था। यह मुख्य रूप से बंगाल, बिहार और असम में हुआ। इस विद्रोह का प्रभाव केवल किसानों के आर्थिक हालात तक सीमित नहीं था, बल्कि इसने भारत में सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन की नींव भी रखी। इस विद्रोह ने न केवल भारतीय समाज में राजनीतिक चेतना को जन्म दिया, बल्कि ब्रिटिश सरकार को भी अपनी नीतियों में बदलाव करने के लिए मजबूर किया।

नील विद्रोह के सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है—

### नील विद्रोह का सामाजिक प्रभाव

### 1. भारतीय किसानों में आत्मसम्मान और अधिकारों की जागरूकता

• नील विद्रोह ने भारतीय किसानों को यह अहसास कराया कि वे संगठित होकर अन्याय और शोषण का विरोध कर सकते हैं।

• इससे पहले किसान ब्रिटिश सरकार और ज़मींदारों से डरते थे, लेकिन इस आंदोलन के बाद उनमें स्वाभिमान और अधिकारों की चेतना जागी।

• किसानों को यह विश्वास हुआ कि उनकी एकता और संघर्ष से वे अपने हक के लिए लड़ सकते हैं।

### 2. भारतीय समाज में पहली बार संगठित जन आंदोलन की शुरुआत

• नील विद्रोह भारत में पहला संगठित किसान आंदोलन था, जिसमें ग्रामीण जनता ने बड़े पैमाने पर भाग लिया।

• यह विद्रोह साबित करता है कि जनता संगठित होकर शक्तिशाली ब्रिटिश शासन का विरोध कर सकती है।

• आगे चलकर यही विचारधारा चंपारण सत्याग्रह (1917), खेड़ा सत्याग्रह (1918) और बारदोली सत्याग्रह (1928) जैसे आंदोलनों का आधार बनी।

**3. सामाजिक समानता और जातिगत भेदभाव में कमी**

• इस विद्रोह में हर जाति और वर्ग के किसानों ने एक साथ मिलकर संघर्ष किया, जिससे सामाजिक एकता मजबूत हुई।

• किसानों में जाति, धर्म और भाषा के भेदभाव को दरकिनार कर सामूहिक संघर्ष करने की भावना विकसित हुई।

• इससे भारतीय समाज में जातिगत ऊँच-नीच का प्रभाव कुछ हद तक कम हुआ, और संगठित संघर्ष का विचार मजबूत हुआ।

**4. नील व्यापारियों के अत्याचारों की पहचान और सामाजिक सुधारों की शुरुआत**

• इस विद्रोह के कारण समाज में ब्रिटिश नील व्यापारियों द्वारा किए जा रहे अत्याचारों की सच्चाई उजागर हुई।

• भारतीय समाज में ब्रिटिश नीतियों के खिलाफ असंतोष बढ़ा, जिससे लोगों में राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ।

• सरकार ने नील की खेती पर पुनर्विचार किया और किसानों को नील की खेती से मुक्ति दिलाने के लिए सुधारवादी नीतियाँ अपनानी पड़ीं।

**5. साहित्य और पत्रकारिता में सामाजिक चेतना का उदय**

• इस विद्रोह के प्रभाव से भारतीय साहित्य और पत्रकारिता में ब्रिटिश शोषण के खिलाफ आवाज उठने लगी।

• दीनबंधु मित्रा ने "नील दर्पण" नामक नाटक लिखा, जिसमें नील व्यापारियों के शोषण का वास्तविक चित्रण किया गया।

• भारतीय प्रेस ने नील किसानों की समस्याओं को उजागर किया, जिससे समाज में ब्रिटिश विरोधी विचारधारा का प्रचार बढ़ा।

**नील विद्रोह का राजनीतिक प्रभाव-**

**1. ब्रिटिश सरकार की नीतियों में परिवर्तन**

• नील विद्रोह की सफलता के बाद, ब्रिटिश सरकार को किसानों की मांगों को मानना पड़ा।

• 1861 में नील आयोग (Indigo Commission) का गठन किया गया, जिसने किसानों की शिकायतों की जांच की।

• इसके बाद, नील की जबरन खेती समाप्त कर दी गई, जिससे किसानों को बड़ी राहत मिली।

**2. भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष की नींव रखी**

• यह विद्रोह आने वाले स्वतंत्रता संघर्ष के लिए प्रेरणा स्रोत बना।

• इस विद्रोह ने दिखाया कि ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष किया जा सकता है और यही भावना बाद में असहयोग आंदोलन (1920) और भारत छोड़ो आंदोलन (1942) में दिखाई दी।

• इस विद्रोह ने भारतीय नेताओं को यह समझाया कि किसानों को स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बनाना जरूरी है।

**3. राष्ट्रीय आंदोलन में किसानों की भूमिका बढ़ी**

• नील विद्रोह के बाद भारतीय किसान राजनीतिक रूप से जागरूक हो गए और आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे।

• इसका सबसे बड़ा उदाहरण चंपारण सत्याग्रह (1917) है, जिसमें गांधीजी ने किसानों को संगठित किया और ब्रिटिश सरकार को झुकने पर मजबूर किया।

• किसानों की बढ़ती भागीदारी के कारण भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी कृषि सुधारों को अपने एजेंडे में शामिल किया।

**4. ब्रिटिश शासन की कमजोरी उजागर हुई**

• इस विद्रोह के दौरान ब्रिटिश प्रशासन की निर्बलता और जन विद्रोह को संभालने में असमर्थता सामने आई।

• सरकार को नील व्यापारियों के अत्याचारों को रोकने के लिए कदम उठाने पड़े, जिससे ब्रिटिश सत्ता की कमजोरी उजागर हुई।

• इससे यह स्पष्ट हो गया कि यदि भारतीय जनता संगठित होकर विरोध करे, तो ब्रिटिश हुकूमत को झुकाया जा सकता है।

**5. भारतीय नेताओं का ध्यान किसानों की समस्याओं की ओर आकर्षित हुआ**

• इस विद्रोह के बाद भारतीय नेताओं ने किसानों की समस्याओं को समझना शुरू किया।

• दादा भाई नौरोजी, सुरेंद्रनाथ बनर्जी और महात्मा गांधी जैसे नेताओं ने महसूस किया कि यदि किसानों को संगठित किया जाए, तो स्वतंत्रता संग्राम को मजबूती मिल सकती है।

• इसी कारण, आगे के आंदोलनों में किसानों को एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में शामिल किया गया।

**निष्कर्ष:**

नील विद्रोह का प्रभाव सामाजिक और राजनीतिक दोनों स्तरों पर गहरा पड़ा। इसने भारतीय किसानों में आत्मसम्मान, संघर्ष करने की क्षमता और अधिकारों की जागरूकता को जन्म दिया। इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासन की नीतियों को बदलने पर मजबूर किया और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की नींव रखी।

इसके सामाजिक प्रभाव से भारतीय समाज में संगठित आंदोलन, जातिगत भेदभाव में कमी और सामाजिक सुधारों का विकास हुआ, जबकि राजनीतिक प्रभाव से ब्रिटिश प्रशासन की कमजोरी उजागर हुई, किसानों की भूमिका बढ़ी और स्वतंत्रता संग्राम में नए आंदोलनों की प्रेरणा मिली।

इस प्रकार, नील विद्रोह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जिसने आगे चलकर चंपारण सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन जैसे बड़े जनआंदोलनों की पृष्ठभूमि तैयार की।

## d. क्रिप्स मिशन प्रस्ताव

क्रिप्स मिशन का गठन 1942 में ब्रिटिश सरकार द्वारा किया गया था, जिसका उद्देश्य भारत में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भारतीय सहयोग प्राप्त करना था। इस मिशन का नेतृत्व सर स्टैफोर्ड क्रिप्स ने किया, जो ब्रिटिश कैबिनेट के एक वरिष्ठ सदस्य थे। क्रिप्स मिशन ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग को कुछ स्वायत्तता देने की पेशकश की थी, ताकि वे ब्रिटिश सरकार के खिलाफ न उठें और युद्ध में सहयोग करें ,लेकिन कांग्रेस ने इसे अस्वीकार कर दिया।

### 1. क्रिप्स मिशन के प्रमुख प्रावधान (Key Provisions of the Cripps Mission)

(i) भारत के भविष्य के लिए स्वतंत्रता का वादा

• क्रिप्स मिशन ने भारत को स्वराज (डोमिनियन स्टेटस के रूप में) देने का वादा किया, लेकिन यह वादा एक निश्चित समय सीमा के भीतर नहीं था।

• ब्रिटिश सरकार ने यह प्रस्ताव दिया कि द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद भारत को एक नया संविधान और स्वशासन मिलेगा।

(ii) भारतीयों को संविधान सभा में प्रतिनिधित्व

• क्रिप्स मिशन ने यह प्रस्ताव रखा कि संविधान सभा के माध्यम से भारत का संविधान तैयार किया जाएगा, जिसमें भारतीयों को पूर्ण भागीदारी का अवसर मिलेगा।

• भारतीयों को यह प्रस्ताव दिया गया कि वे संविधान सभा में अपनी इच्छा के अनुसार प्रतिनिधित्व कर सकते हैं।

(iii) प्रांतों को अधिक स्वायत्तता (Autonomy)

• प्रांतों को अधिक स्वायत्तता दी जाने की बात की गई थी, विशेषकर उन मामलों में जो प्रांतीय स्तर पर महत्वपूर्ण थे, जैसे शिक्षा, कानून और व्यवस्था, आदि।

• साथ ही, एक संविधानिक आयोग का गठन किया जाएगा, जो इन मामलों में सुधार करेगा और प्रांतों को अधिक अधिकार प्रदान करेगा।

(iv) मुस्लिम लीग और अन्य अल्पसंख्यकों को सुरक्षा का आश्वासन

• क्रिप्स मिशन ने मुस्लिम लीग और अन्य अल्पसंख्यक समुदायों को यह आश्वासन दिया कि उनके अधिकारों का सम्मान किया जाएगा और उन्हें एक विशेष प्रतिनिधित्व मिलेगा।

• अल्पसंख्यकों के लिए अलग निर्वाचक मंडल की व्यवस्था को बरकरार रखा जाएगा।

(v) स्वायत्तता के साथ राष्ट्रीयता (Dominion Status)

• ब्रिटिश सरकार ने यह भी स्पष्ट किया कि जब तक द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त नहीं होता, तब तक भारत को "डॉमिनियन स्टेटस" (स्वायत्त राष्ट्र) प्रदान किया जाएगा।

• इसका मतलब था कि भारत को संविधानिक स्वायत्तता मिलती, लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बने रहने की स्थिति में।

कांग्रेस ने क्रिप्स मिशन के प्रस्ताव को 1942 में कई कारणों से अस्वीकार कर दिया, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं:

(i) स्वतंत्रता का अधूरा वादा (Incomplete Promise of Independence)

• क्रिप्स मिशन ने भारत को dominian status देने का वादा किया था, लेकिन तारीख निश्चित नहीं थी। यह केवल युद्ध के बाद की एक अस्थायी स्वायत्तता का वादा था।

• कांग्रेस का मानना था कि भारत को तत्काल स्वतंत्रता मिलनी चाहिए थी, न कि कुछ समय बाद के लिए अस्थायी स्वायत्तता का प्रस्ताव।

(ii) भारत के पूर्ण प्रतिनिधित्व की कमी (Lack of Full Representation for Indians)

• क्रिप्स मिशन ने संविधान सभा में भारतीयों को भागीदारी देने का वादा किया, लेकिन कांग्रेस के अनुसार यह अस्थायी था और यह पूरी तरह से भारतीय जनता की इच्छाओं के अनुरूप नहीं था।

• कांग्रेस ने यह महसूस किया कि ब्रिटिश सरकार का प्रभुत्व संविधान सभा और अन्य महत्वपूर्ण निर्णयों पर बना रहेगा, जो भारतीयों के समान अधिकार की अवहेलना करता था।

(iii) मुस्लिम लीग और अन्य अल्पसंख्यकों को विशेष प्रतिनिधित्व (Separate Representation for Muslims and Minorities)

• क्रिप्स मिशन में मुस्लिम लीग और अन्य अल्पसंख्यकों को अलग निर्वाचक मंडल (Separate Electorates) का प्रावधान था, जो कांग्रेस के लिए सांप्रदायिक ध्रुवीकरण का कारण बनता था।

• कांग्रेस ने हमेशा हिंदू-मुस्लिम एकता की बात की थी और इस प्रस्ताव को अस्वीकार किया क्योंकि यह भारत के एकजुट राष्ट्र के विचार के खिलाफ था।

(iv) गवर्नर जनरल की शक्तियों में कोई बदलाव नहीं (No Change in Powers of the Governor-General)

• क्रिप्स मिशन के प्रस्ताव में गवर्नर जनरल के अधिकारों में कोई ठोस बदलाव नहीं किया गया था। गवर्नर जनरल के पास वैकल्पिक शक्ति (veto power) थी, जिसके द्वारा वे भारतीय मंत्रियों के निर्णयों को अस्वीकार कर सकते थे।

• कांग्रेस ने इसे अधिकारों का सशक्तीकरण नहीं माना और इसे ब्रिटिश शासन का कंट्रोल बनाए रखने का तरीका समझा।

(v) युद्ध के दौरान भारतीयों के लिए कोई ठोस कदम नहीं (No Concrete Steps for Indian Participation in War)

• क्रिप्स मिशन ने भारत के स्वतंत्रता के मुद्दे को द्वितीय विश्व युद्ध के बाद छोड़ दिया था। कांग्रेस ने यह महसूस किया कि यदि भारत को स्वतंत्रता चाहिए, तो युद्ध के समय भी भारतीयों को स्वतंत्रता की प्रक्रिया में पूर्ण रूप से भागीदार बनाना चाहिए था।

(vi) कांग्रेस की स्वतंत्रता की मांग

कांग्रेस ने हमेशा पूर्ण स्वराज (Complete Independence) की मांग की थी, जबकि क्रिप्स मिशन केवल डॉमिनियन स्टेटस (स्वतंत्र राष्ट्र की स्थिति) की पेशकश कर रहा था, जो कांग्रेस के लिए अस्वीकार्य था।

**गांधीजी की प्रतिक्रिया:**

**"नकली" प्रस्ताव:**

गांधीजी ने क्रिप्स मिशन के प्रस्ताव को "नकली" कहा, क्योंकि इसने भारत को पूर्ण स्वतंत्रता का वादा नहीं किया था। वह समझते थे कि ब्रिटिश सरकार का प्रस्ताव केवल स्वराज के नाम पर एक छलावा था। क्रिप्स मिशन ने भारत को डॉमिनियन स्टेटस (स्वतंत्र राष्ट्र की स्थिति) का वादा किया था, जो कांग्रेस के दृष्टिकोण से अपर्याप्त था।

**स्वतंत्रता का आधा वादा:**

गांधीजी का मानना था कि स्वतंत्रता केवल ब्रिटिश सत्ता से मुक्ति द्वारा प्राप्त की जा सकती थी, और क्रिप्स मिशन में भारत को केवल स्वायत्तता (autonomy) का वादा किया गया था। यह सिर्फ एक आंशिक स्वराज था, जिसमें भारत को वास्तविक अधिकार नहीं मिल रहे थे।

**"बड़ी धोखाधड़ी":**

गांधीजी ने इस प्रस्ताव को एक "बड़ी धोखाधड़ी" करार दिया, क्योंकि इसमें भारतीयों को सीमित अधिकार दिए गए थे, जबकि असली शक्ति ब्रिटिश गवर्नर और ब्रिटिश सरकार के हाथों में ही थी। भारत के संविधान में कोई ठोस बदलाव नहीं किया गया था और भारतीयों को असली निर्णय लेने की शक्ति नहीं दी गई थी।

**अल्पसंख्यकों के लिए अलग निर्वाचक मंडल:**

क्रिप्स मिशन ने अलग निर्वाचक मंडल की व्यवस्था को जारी रखा, जो गांधीजी के अनुसार सांप्रदायिक विभाजन को बढ़ावा देने वाला था। गांधीजी ने इसे अस्वीकार किया क्योंकि इससे हिंदू-मुसलमान एकता को नुकसान हो सकता था और राजनीतिक तनाव बढ़ सकता था।

महात्मा गांधी और अन्य नेताओं ने यह स्पष्ट किया कि वे केवल पूर्ण स्वतंत्रता को स्वीकार करेंगे, और कोई भी अन्य प्रस्ताव उन्हें निराशाजनक लगा।

**निष्कर्ष (Conclusion)**

क्रिप्स मिशन, 1942 भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महत्वपूर्ण मोड़ पर आया था, जब भारतीयों ने पूरी स्वतंत्रता की मांग को जोर-शोर से उठाया। क्रिप्स मिशन ने कुछ सुधारों की पेशकश की, लेकिन यह प्रस्ताव भारतीयों की इच्छाओं और स्वतंत्रता संग्राम की भावना के अनुरूप नहीं था। कांग्रेस ने इसे आंशिक और अधूरा समझते हुए अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वे पूरी स्वतंत्रता के लिए दृढ़ थे। इसके परिणामस्वरूप भारत छोड़ो आंदोलन (Quit India Movement) की शुरुआत हुई, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक और निर्णायक मोड़ साबित हुआ।

## e. धर्म और राजनीति पर महात्मा गांधी के विचार

### 1. धर्म और राजनीति के संबंध में विवाद

• आधुनिक काल में धर्म और राजनीति के संबंध पर बहुत विवाद रहा है।

• 16वीं सदी में मैकियावेली ने पहली बार यह स्पष्ट किया कि धर्म को राजनीति से दूर रखना चाहिए।

• बाद में जॉन ऑस्टिन और अन्य विचारकों ने भी इस विचार को आगे बढ़ाया।

• मार्क्स ने न केवल राजनीति में, बल्कि उसके बाहर भी धर्म को निषेध किया।

### 2. महात्मा गांधी का दृष्टिकोण

• महात्मा गांधी का दृष्टिकोण धर्म और राजनीति के संबंध में इन विचारों से बिल्कुल विपरीत था।

• गांधीजी ने कहा, "धर्म विहीन राजनीति मृत देह के समान है, जिसे नष्ट कर दिया जाना चाहिए।"

• गांधीजी का मानना था कि धर्म और राजनीति के बीच जितना विरोध दिखता है, उतना है नहीं। दोनों का गहरा संबंध है।

**3. धर्म शब्द का गांधीजी द्वारा प्रयोग**

- गांधीजी ने धर्म शब्द का दो प्रकार से प्रयोग किया है:
- मजहब या पंथ के रूप में, जो धार्मिक विचारधारा से संबंधित है।
- स्व-कर्तव्य पालन के रूप में, जो दार्शनिक स्तर पर आत्मनिर्भरता और नैतिक जिम्मेदारी को व्यक्त करता है।

**4. राजनीति में धर्म का महत्व**

• गांधीजी के अनुसार, राजनीति में धर्म का पालन स्व-कर्तव्य और नैतिक दायित्व के रूप में किया जाना चाहिए।

• राजनेताओं पर यह नैतिक जिम्मेदारी है कि वे अपने स्वार्थ से मुक्त होकर कर्तव्य पालन के भाव से प्रशासन चलाएं।

• इसका अर्थ यह है कि नैतिकता और धार्मिक मूल्य राजनीति का हिस्सा बनकर ही समाज में सच्चे विकास की दिशा में योगदान दे सकते हैं।

**5. धर्म और राजनीति का सामंजस्य**

• गांधीजी के अनुसार, धर्म और राजनीति के बीच सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक है।

• धर्म नैतिकता और कर्तव्य का परिचायक है, जबकि राजनीति लोक कल्याण और न्याय का माध्यम है।

• यदि राजनीति में धर्म का समावेश नहीं होगा, तो वह सामाजिक और नैतिक दृष्टि से कमजोर हो जाएगी।

**6. गांधीजी का आदर्श**

• गांधीजी के विचारों में, धर्म केवल आस्थाओं और रीतियों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक संपूर्ण जीवन दर्शन था।

• उन्होंने हमेशा सत्य, अहिंसा, समानता, और नैतिकता को राजनीति का अभिन्न अंग माना।

**प्लेटो के दार्शनिक राजा और गांधीजी के विचारों में साम्य**

• महात्मा गांधी के विचार प्लेटो के दार्शनिक राजा के सिद्धांत के निकट प्रतीत होते हैं।

• प्लेटो ने अपने सिद्धांत में राजा को अपने स्वार्थ से मुक्त होकर, अपने विवेक और धार्मिक मूल्यों के आधार पर शासन चलाने की सलाह दी थी।

• इसी प्रकार, गांधीजी भी चाहते थे कि राजनीति में स्वार्थ से मुक्त होकर कर्तव्य और नैतिकता का पालन किया जाए, और लोक कल्याण की दिशा में निर्णय लिए जाएं।

**2. कौटिल्य का सप्तांग सिद्धांत और गांधीजी के विचार**

• कौटिल्य ने अपने सप्तांग सिद्धांत में राजा को यह सलाह दी थी कि वह राज्य के विभिन्न अंगों का समन्वय करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करे और राज्य की सामाजिक और नैतिक जिम्मेदारी को समझे।

• गांधीजी के विचार भी इसी दिशा में थे, जहां उन्होंने राजनीतिक शासन को केवल स्वार्थ से दूर रखते हुए, सामाजिक कर्तव्य और नैतिक सिद्धांतों के आधार पर चलाने की बात की।

**3. गांधीजी का धर्मनिरपेक्षता पर दृष्टिकोण**

• गांधीजी का यह कहना था कि वे सांप्रदायिक राजनीति का समर्थन नहीं करते।

• वे मजहब के अर्थ में धर्म को राजनीति का हिस्सा नहीं बनाना चाहते थे, क्योंकि यह समाज में विभाजन और संघर्ष उत्पन्न कर सकता है।

• हालांकि, गांधीजी ने पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत से अलग हटकर, 'सर्वधर्मसमभाव' (सम्पूर्ण धर्मों का समान सम्मान) का समर्थन किया।

**4. सर्वधर्मसमभाव का सिद्धांत**

• सर्वधर्मसमभाव का मतलब है कि राज्य को धर्मों से दूर नहीं भागना चाहिए, बल्कि सभी धर्मों का समान सम्मान करना चाहिए।

• गांधीजी के अनुसार, राज्य को धर्मों से दूरी बनाने के बजाय धर्मों के बीच समानता और सम्मान स्थापित करना चाहिए।

• गांधीजी ने यह स्पष्ट किया कि राजनीति और धर्म के बीच पूरी तरह से विभेद नहीं होना चाहिए, लेकिन धर्म का उपयोग राजनीति में सांप्रदायिकता या विभाजन के लिए नहीं किया जाना चाहिए।

**5. पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता से भिन्न गांधीजी का दृष्टिकोण**

• पश्चिमी धर्मनिरपेक्षता, जैसे जॉर्ज होलियाक के सिद्धांत के अनुसार, राजनीति और धर्म के बीच पूर्ण विभाजन का समर्थन करती है।

• इसके विपरीत, गांधीजी धर्मनिरपेक्षता को एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण के रूप में मानते थे, जहां सभी धर्मों का सम्मान करते हुए, समाज में समानता और सामाजिक न्याय स्थापित किया जाए।

**निष्कर्ष:**

महात्मा गांधी के विचार प्लेटो के दार्शनिक राजा और कौटिल्य के सप्तांग सिद्धांत से मिलते-जुलते हैं, जहां राजनीति को स्वार्थ और धार्मिक कट्टरता से मुक्त करके, सामाजिक नैतिकता और कर्तव्य से संचालित किया जाना चाहिए। गांधीजी धर्मनिरपेक्षता को परिभाषित करते हुए, सर्वधर्मसमभाव का समर्थन करते हैं, और उनका मानना था कि राज्य को धर्मों से समान सम्मान के साथ जुड़ना चाहिए, न कि उन्हें राजनीति से अलग रखना चाहिए|

महात्मा गांधी के अनुसार, धर्म और राजनीति के बीच घनिष्ठ संबंध होना चाहिए। धर्म का अर्थ केवल धार्मिक आस्थाओं से नहीं, बल्कि स्व-कर्तव्य पालन और नैतिक जिम्मेदारी से है। गांधीजी का मानना था कि यदि राजनीति में धर्म का समावेश नहीं होगा तो वह समाज में सही दिशा में सुधार लाने में सक्षम नहीं हो सकती।

## 5.a भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में उदारवादी एवं उग्रवादी गुट में मतांतर के लक्षण विद्यमान थे। कथन की समीक्षा कीजिए। इनके आपसी मतभेदों ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों को किस प्रकार प्रभावित किया?

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान, **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC)** के भीतर दो प्रमुख विचारधाराएँ उभरीं—**उदारवादी (Moderates) और उग्रवादी (Extremists)**। 1907 के **सूरत अधिवेशन** में इन दोनों गुटों के बीच खुला विभाजन देखने को मिला। यह विभाजन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की रणनीति और लक्ष्यों को लेकर उनके भिन्न दृष्टिकोणों के कारण हुआ था।

### 1. उदारवादी (Moderates) गुट

**प्रमुख नेता** – दादा भाई नैरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता आदि।

**नीतियाँ और विचारधारा**

- **संवैधानिक सुधारों पर बल** – उदारवादी ब्रिटिश शासन के प्रति नरम रुख रखते थे और संवैधानिक सुधारों के माध्यम से भारत में स्वशासन लाने में विश्वास करते थे।
- **प्रार्थना, निवेदन और याचिका की नीति** – इन्होंने ब्रिटिश सरकार से अपनी मांगें रखने के लिए **याचिका (Petition), ज्ञापन (Memorandum) और बहस (Debate)** का सहारा लिया।
- **धैर्य और शांतिपूर्ण संघर्ष** – इनका मानना था कि भारत को धीरे-धीरे स्वशासन (Self-Government) प्राप्त होगा।
- **ब्रिटिश सरकार में आस्था** – उदारवादियों को विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार भारतीयों के हित में कार्य करेगी और उनकी मांगों को मान लेगी।
- **सामाजिक सुधारों पर ध्यान** – ये सामाजिक बुराइयों को दूर करने, शिक्षा के प्रचार-प्रसार और औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने पर जोर देते थे।
- **संविधान के भीतर रहकर कार्य करना** – इन्होंने 1861 और 1892 के अधिनियमों के तहत सुधारों की मांग की।

**उदारवादियों की उपलब्धियाँ**

- इन्होंने **भारतीय परिषद अधिनियम, 1892** और **मार्ले-मिंटो सुधार, 1909** जैसे संवैधानिक सुधारों की नींव रखी।
- राष्ट्रीय जागरूकता बढ़ाने में योगदान दिया।
- **दादा भाई नैरोजी** ने अपने **"ड्रेनेज थ्योरी"** के माध्यम से ब्रिटिश आर्थिक शोषण को उजागर किया।

### 2. उग्रवादी (Extremists) गुट

**प्रमुख नेता** – बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चंद्र पाल, अरबिंदो घोष आदि।

**नीतियाँ और विचारधारा**

- **स्वराज (पूर्ण स्वतंत्रता) की मांग** – उग्रवादियों ने स्पष्ट रूप से ब्रिटिश शासन से पूरी स्वतंत्रता की मांग की।
- **संघर्ष और प्रत्यक्ष कार्रवाई** – इनका मानना था कि केवल याचिकाएँ और निवेदन पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि सरकार पर दबाव डालने के लिए आंदोलन जरूरी है।
- **स्वदेशी आंदोलन और बहिष्कार** – इन्होंने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा दिया।
- **राष्ट्रीय शिक्षा पर जोर** – ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली की जगह स्वदेशी शिक्षा प्रणाली को अपनाने पर बल दिया।
- **चरमपंथी और क्रांतिकारी गतिविधियाँ** – कुछ उग्रवादी नेताओं ने क्रांतिकारी आंदोलनों को भी प्रोत्साहन दिया।
- **बल प्रयोग को उचित ठहराया** – वे मानते थे कि स्वशासन के लिए कभी-कभी बल प्रयोग भी जरूरी हो सकता है।

**उग्रवादियों की उपलब्धियाँ**

- **1905 का बंगाल विभाजन** का कड़ा विरोध किया और उसे रद्द कराने में सफल रहे।
- स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलनों के माध्यम से राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक बनाया।
- "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा" – बाल गंगाधर तिलक का यह नारा स्वतंत्रता संग्राम का प्रेरणास्त्रोत बना।

**3. उदारवादियों और उग्रवादियों के बीच मुख्य अंतर**

| विशेषता | उदारवादी (Moderates) | उग्रवादी (Extremists) |
|---|---|---|
| **दृष्टिकोण** | नरमपंथी, ब्रिटिश सरकार पर भरोसा | क्रांतिकारी, ब्रिटिश सरकार के प्रति अविश्वास |
| **रणनीति** | निवेदन, याचिका, संवैधानिक सुधारों की मांग | प्रत्यक्ष आंदोलन, बहिष्कार, स्वदेशी |
| **मांगें** | धीरे-धीरे स्वशासन की प्राप्ति | तुरंत स्वराज की मांग |
| **प्रमुख आंदोलन** | कांग्रेस की प्रारंभिक गतिविधियाँ | बंग-भंग विरोध आंदोलन, स्वदेशी आंदोलन |
| **प्रभाव** | संवैधानिक सुधारों की नींव रखी | ब्रिटिश सरकार को कड़ी चुनौती दी |

**4. 1907 का सूरत विभाजन और परिणाम**

- 1907 के **सूरत अधिवेशन** में उग्रवादियों और उदारवादियों के बीच मतभेद चरम पर पहुंच गए।
- इसका सबसे बड़ा प्रभाव यह हुआ कि 1909 के **मार्ले-मिंटो सुधारों** में ब्रिटिश सरकार ने उदारवादियों को संतुष्ट करने के लिए कुछ सुधार किए, लेकिन यह विभाजन उग्रवादियों की शक्ति को कमजोर करने का एक तरीका था।
- बाद में, 1916 में **लखनऊ समझौते** के तहत दोनों गुट फिर से एकजुट हुए।

**उग्रवादियों और उदारवादियों के बीच मतभेद और भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रभाव**

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) में 19वीं और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में **उदारवादी (Moderates) और उग्रवादी (Extremists)** गुटों के बीच मतभेद उभरकर सामने आए। 1907 के **सूरत अधिवेशन** में यह टकराव चरम पर पहुँच गया और कांग्रेस दो गुटों में बँट गई। इस विभाजन ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को कई प्रकार से प्रभावित किया—कुछ सकारात्मक रूप में, तो कुछ नकारात्मक रूप में।

**1. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर नकारात्मक प्रभाव**

**(i) आंदोलन की गति में अस्थायी रुकावट**

- 1907 में कांग्रेस के विभाजन के बाद, आंदोलन कुछ वर्षों तक कमजोर पड़ गया।
- ब्रिटिश सरकार ने इस विभाजन का फायदा उठाकर **"फूट डालो और राज करो"** की नीति को और मजबूत किया।
- उग्रवादी नेताओं पर दमनकारी नीतियाँ लागू की गईं—बाल गंगाधर तिलक को 1908 में मांडले (बर्मा) भेज दिया गया।

**(ii) ब्रिटिश सरकार को लाभ**

- ब्रिटिश सरकार ने **1909 के मार्ले-मिंटो सुधारों** में उदारवादियों को संतुष्ट करने के लिए कुछ संवैधानिक सुधार दिए, लेकिन साथ ही मुस्लिम लीग को प्रोत्साहित करके कांग्रेस को और विभाजित करने की कोशिश की।
- उदारवादियों की नीतियाँ नरम थीं, जिससे ब्रिटिश सरकार पर अधिक दबाव नहीं बना।
- उग्रवादियों की अनुपस्थिति में कांग्रेस की शक्ति कमजोर हो गई।

**(iii) हिंदू-मुस्लिम एकता पर असर**

- उग्रवादियों और उदारवादियों के मतभेदों के कारण कांग्रेस का प्रभाव कम हुआ, और ब्रिटिश सरकार ने **1909 में अलग निर्वाचन प्रणाली** लागू कर हिंदू-मुस्लिम एकता को कमजोर किया।
- इससे आगे चलकर सांप्रदायिकता को बढ़ावा मिला।

**2. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर सकारात्मक प्रभाव**

**(i) संघर्ष और प्रत्यक्ष आंदोलन की शुरुआत**

- उग्रवादी नेताओं की नीतियों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में **स्वराज, स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा** जैसे प्रभावी हथियार दिए।
- 1905 में बंगाल विभाजन के विरोध में **स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन** शुरू हुआ, जिसने जन-जागरण को मजबूत किया।

**(ii) जन-आंदोलन का विस्तार**

- उग्रवादियों के प्रयासों से आंदोलन सिर्फ पढ़े-लिखे बुद्धिजीवियों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि किसानों, मजदूरों और युवाओं तक फैल गया।
- 1907 के बाद स्वतंत्रता संग्राम में जनता की भागीदारी बढ़ी।

**(iii) भविष्य के आंदोलनों की नींव रखी**

- उग्रवादियों की संघर्षशील नीति ने आगे चलकर **गांधीजी के असहयोग आंदोलन (1920), सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930) और भारत छोड़ो आंदोलन (1942)** को प्रेरित किया।
- "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा" (बाल गंगाधर तिलक) जैसे नारे स्वतंत्रता संग्राम का मार्गदर्शन करने लगे।

**(iv) 1916 में लखनऊ समझौते के माध्यम से पुनः एकता**

- 1916 में **लखनऊ समझौते** के तहत दोनों गुट फिर से एकजुट हुए और कांग्रेस मजबूत हुई।
- इस समझौते में मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच सहयोग बढ़ा, जिससे स्वतंत्रता संग्राम को और गति मिली।

**निष्कर्ष**

**उदारवादी और उग्रवादी गुटों के मतभेदों ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को कुछ समय के लिए कमजोर किया, लेकिन लंबे समय में इसने आंदोलन को अधिक प्रभावशाली बना दिया।** उग्रवादियों ने संघर्ष और प्रत्यक्ष कार्रवाई का मार्ग प्रशस्त किया, जबकि उदारवादियों ने राजनीतिक जागरूकता बढ़ाई। दोनों गुटों की रणनीतियों ने मिलकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को मजबूती दी और अंततः 1947 में भारत को स्वतंत्रता दिलाने में मदद की।

## b. 19वीं सदी के प्रमुख सामाजिक–धार्मिक सुधारों के विषय में संक्षिप्त चर्चा कीजिए तथा बताइए कि इन सुधारों ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनों को किस प्रकार निर्देशित किया।

19वीं शताब्दी में सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलनों की शुरुआत भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, जातिवाद, अस्पृश्यता, बाल विवाह, सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर रोक और महिलाओं की दयनीय स्थिति के खिलाफ हुई। इन आंदोलनों ने भारतीय समाज में सुधार लाने के साथ-साथ राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित किया।

19वीं सदी के प्रमुख सामाजिक और धार्मिक सुधारों ने भारतीय समाज में महत्वपूर्ण बदलाव लाए। इन सुधारों ने समाज की पुरानी परंपराओं, रीति-रिवाजों, और बुराइयों को चुनौती दी और एक नए सामाजिक दृष्टिकोण को जन्म दिया।

**महत्वपूर्ण सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन और उनका प्रभाव**

| सुधार आंदोलन | संस्थापक | राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रभाव |
|---|---|---|
| **ब्रह्म समाज (1828)** | राजा राममोहन राय | सामाजिक समानता, महिला सुधार, आधुनिक शिक्षा, प्रेस की स्वतंत्रता। |
| **आर्य समाज (1875)** | स्वामी दयानंद सरस्वती | स्वराज्य की अवधारणा, जातिवाद विरोध, स्वदेशी आंदोलन को प्रेरणा। |

| | | |
|---|---|---|
| **रामकृष्ण मिशन (1897)** | स्वामी विवेकानंद | राष्ट्रीयता और भारतीय संस्कृति का उत्थान। |
| **प्रार्थना समाज (1867)** | आत्माराम पांडुरंग | सामाजिक सुधार, दलित उत्थान। |
| **सत्यशोधक समाज (1873)** | ज्योतिबा फुले | दलितों और महिलाओं के अधिकार, सामाजिक न्याय। |
| **थियोसॉफिकल सोसाइटी (1875)** | एनी बेसेंट | होमरूल आंदोलन को प्रेरणा। |

**1. राम मोहन राय और ब्रह्म समाज (Brahmo Samaj)**

- **स्थापना**: 1828 में **राम मोहन राय** ने **ब्रह्म समाज** की स्थापना की।
- **सुधार**: उन्होंने हिंदू धर्म में व्याप्त अंधविश्वास, मूर्तिपूजा और सती प्रथा के खिलाफ आवाज उठाई।
- **मुख्य उद्देश्य**: एकेश्वरवाद (Monotheism), धार्मिक तर्क और सामाजिक सुधार।

**2. सती प्रथा का उन्मूलन**

- **नेता**: **राम मोहन राय** ने सती प्रथा के खिलाफ अभियान चलाया।
- **कानूनी कदम**: **भारत सरकार** ने 1829 में सती प्रथा को गैरकानूनी घोषित किया, जो राम मोहन राय के प्रयासों का परिणाम था।

**3. शिक्षा का सुधार**

- **शिक्षा सुधार**: उन्होंने भारतीय समाज में आधुनिक शिक्षा का प्रसार किया।
- **महत्वपूर्ण योगदान**: **डेविड हेयर** ने इंग्लिश शिक्षा को बढ़ावा दिया और भारतीय महिलाओं की शिक्षा पर जोर दिया।

**4. चार्ल्सवुड डिस्पैच और भारतीय शिक्षा**

- **चार्ल्सवुड डिस्पैच (1854)**: इसके द्वारा अंग्रेजी शिक्षा को बढ़ावा दिया गया और भारत में कई नए स्कूल और कॉलेज स्थापित किए गए।

**5. विवाह सुधार (Marriage Reforms)**

- **ईश्वर चंद्र विद्यासागर**: उन्होंने 1856 में **हिंदू विधवा विवाह अधिनियम** की पहल की, जिसके माध्यम से विधवा विवाह को कानूनी स्वीकृति मिली।
- **सुधार**: इस कानून ने विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार दिया।

**6. महिला शिक्षा और सशक्तिकरण**

- **सावित्रीबाई फुले**: उन्होंने भारत में महिला शिक्षा का प्रसार शुरू किया और पहले महिला स्कूल की स्थापना की।
- **रामबाई** और **महाराष्ट्र में फुले का योगदान**: इनका महिला शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान था।

**7. धार्मिक सुधार और आर्य समाज**

- **स्वामी दयानंद सरस्वती** ने **आर्य समाज** की स्थापना की।
- **सुधार**: उन्होंने मूर्तिपूजा और पंथों के अंधविश्वासों का विरोध किया और वे **वेदों** के प्रचारक बने। उन्होंने **"सत्यमेव जयते"** का उद्घोष किया।

**8. उदारीकरण और भारतीय समाज में सुधार**

- **नारी अधिकारों का संघर्ष**: **महिला अधिकारों** और **समानता** के लिए कार्य किया गया, जैसे **महिला शिक्षा**, **विधवा विवाह**, और **बाल विवाह** के खिलाफ आंदोलन।

**9. बाल विवाह निषेध अधिनियम (Child Marriage Restraint Act, 1929)**

- **नेता**: कई समाज सुधारकों जिन में राजा राममोहन राय ईश्वर चंद्र विद्यासागर एमजी रानाडे गोपाल कृष्ण गोखले आदि प्रमुख थे ने बाल विवाह को प्रतिबंधित करने के लिए संघर्ष किया।
- **कानूनी सुधार**: **1929** में बाल विवाह निषेध अधिनियम लागू हुआ, जिसमें बालकों के विवाह की उम्र को बढ़ाकर 18वर्ष और लड़कियों के लिए 14 वर्ष किया गया।

**राष्ट्रीय आंदोलन पर सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों का प्रभाव**

**1. आधुनिक राष्ट्रवाद और राजनीतिक चेतना का विकास**

- सुधार आंदोलनों ने भारतीयों को आधुनिक शिक्षा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्कशीलता की ओर प्रेरित किया, जिससे राष्ट्रवाद की भावना विकसित हुई।
- राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती और स्वामी विवेकानंद जैसे समाज सुधारकों ने भारतीयों में आत्मसम्मान और गौरव की भावना जगाई।
- इससे भारतीय समाज में राजनीतिक जागरूकता बढ़ी, जिसने स्वतंत्रता संग्राम को बल दिया।

**2. जातिवाद और सामाजिक असमानता के खिलाफ संघर्ष**

- सुधार आंदोलनों ने जातिवाद, छुआछूत और सामाजिक भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई।
- स्वामी दयानंद सरस्वती और महात्मा गांधी ने जाति-व्यवस्था के विरुद्ध अभियान चलाए, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन में दलितों और पिछड़े वर्गों की भागीदारी बढ़ी।
- महात्मा फुले और डॉ. भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक न्याय और समानता की भावना को बढ़ावा दिया, जिससे दलित आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ गया।

**3. महिलाओं की स्थिति में सुधार और उनकी स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी**

- महिलाओं की शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, सती प्रथा उन्मूलन और बाल विवाह निषेध जैसे सुधारों से महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ।
- पंडिता रमाबाई, सरला देवी, कमला देवी चट्टोपाध्याय, एनी बेसेंट जैसी महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भूमिका निभाई।

- महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक सुधारों के कारण वे राष्ट्रीय आंदोलनों में बढ़-चढ़कर भाग लेने लगीं।

**4. भारतीय संस्कृति और सभ्यता के प्रति जागरूकता**

- सुधार आंदोलनों ने भारतीयों को अपनी सांस्कृतिक विरासत और सभ्यता पर गर्व करना सिखाया।
- स्वामी विवेकानंद और दयानंद सरस्वती ने वेदों और उपनिषदों के महत्व को बताया, जिससे भारतीयों में आत्मसम्मान और आत्मनिर्भरता की भावना बढ़ी।
- इसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक सांस्कृतिक और वैचारिक आधार प्रदान किया।

**5. धार्मिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय एकता**

- सुधार आंदोलनों ने धर्म को एक सामाजिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे राष्ट्रीय एकता मजबूत हुई।
- ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसॉफिकल सोसाइटी ने भारतीय समाज में धार्मिक सहिष्णुता और एकता को बढ़ावा दिया।
- इन आंदोलनों ने हिंदू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा दिया, जिससे स्वतंत्रता संग्राम में साम्प्रदायिक सौहार्द्र की भावना विकसित हुई।

**6. स्वदेशी और आत्मनिर्भरता की भावना**

- सुधार आंदोलनों ने भारतीयों को आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा दी।
- स्वामी विवेकानंद और महात्मा गांधी ने स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग और आत्मनिर्भरता पर जोर दिया, जिससे स्वदेशी आंदोलन को बल मिला।
- सुधार आंदोलनों से प्रेरित होकर महात्मा गांधी ने खादी आंदोलन और ग्रामोद्योग को बढ़ावा दिया।

**7. आधुनिक शिक्षा और प्रेस का विकास**

- राजा राममोहन राय और अन्य सुधारकों ने आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा दिया, जिससे भारतीयों में वैज्ञानिक और तार्किक सोच विकसित हुई।
- प्रेस और समाचार पत्रों के माध्यम से सुधार आंदोलनों के विचार फैलने लगे, जिससे भारतीय समाज में राजनीतिक जागरूकता बढ़ी।
- समाचार पत्रों जैसे **"समाचार चंद्रिका"**, **"अमृत बाजार पत्रिका"**, **"इंडियन मिरर"** और **"केसरी"** ने राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित किया।

**8. ब्रिटिश शासन की आलोचना और विरोध**

- सुधार आंदोलनों ने ब्रिटिश नीतियों की आलोचना की और भारतीयों में आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान की भावना विकसित की।
- दयानंद सरस्वती का "स्वराज्य" का विचार बाद में बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी और अन्य नेताओं के "स्वराज" के सिद्धांत का आधार बना।

- सामाजिक सुधारकों ने ब्रिटिश सरकार की विभाजनकारी नीतियों का विरोध किया और राष्ट्रीय आंदोलन को बल दिया।

**निष्कर्ष**

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों का गहरा प्रभाव पड़ा। इन आंदोलनों ने भारतीय समाज में जागरूकता लाई, जातिवाद और सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लड़ाई लड़ी और महिलाओं तथा दलितों को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। इन आंदोलनों ने आधुनिक शिक्षा, प्रेस और स्वदेशी विचारों को बढ़ावा दिया, जिससे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूती मिली। इस प्रकार, सामाजिक सुधार आंदोलनों ने राष्ट्रीय आंदोलन के लिए एक मजबूत नींव तैयार की और स्वतंत्रता संग्राम को जन आंदोलन में बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

## 6.a 1857 से 1947 तक भारतीय राष्ट्रीय आंदोलनों के विभिन्न चरणों की चर्चा कीजिए।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एक लंबी और संघर्षपूर्ण यात्रा थी, जो 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से लेकर 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्ति तक चली। इस आंदोलन को विभिन्न चरणों में विभाजित किया जा सकता है, जिनमें प्रारंभिक विद्रोह, कांग्रेस का उदय, चरमपंथी राष्ट्रवाद, गांधीवादी आंदोलन और क्रांतिकारी गतिविधियाँ शामिल हैं।

**1857 की क्रांति**

1857 की क्रांति, जिसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम कहा जाता है, भले ही असफल रही हो, लेकिन इसने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर गहरा प्रभाव डाला। इस क्रांति ने भारतीयों में राष्ट्रवाद की भावना को मजबूत किया और आगे के स्वतंत्रता संग्राम के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

- **1857 से लेकर 1947 तक के भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रगति को निम्नलिखित 4 चरणों में बांटा जा सकता है-**
- **1857 से 1885 क दौर जिसमें स्थानीय स्त्र पर और विभिन्न वर्ग समूहों के बीच ब्रिटिश शासन के प्रति विभिन्नन मुद्दों को लेकर उपज रहे असंतोष के चरण के रूप में देखा जा सकता है।**
- **1885 से 1905 तक का दौर जिसे कांग्रेस का प्रारंभिक उदारवादी युग के रूप में जाना जाता है**
- **1905 से 1915 तक का दौर जिसमें गरमपंथी विचारों ने राष्ट्रीय आंदोलन को गति प्रदान की।**
- **1915 से 1947 का दौर जिसे गांधीवादी युग के रूप जाना जाता है इसके साथ ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न चरणों में घटित सशस्त्र क्रांतिकारी गतिविधियों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। विशेषकर 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 20वीं सदी के पहले तीन दशकों तक इसका प्रभाव व्यापक रूप से देखा गया।**
- **इन सभी चरणों में  किए गए राष्ट्रवादी प्रयासों और घटित घटनाओं का विवरण निम्न है-**

1. राष्ट्रवाद की भावना का उदय

- 1857 की क्रांति के बाद भारतीयों में ब्रिटिश शासन के खिलाफ असंतोष बढ़ा।
- विभिन्न जातियों, धर्मों और वर्गों ने मिलकर अंग्रेजों का विरोध किया, जिससे राष्ट्रीय एकता की भावना मजबूत हुई।

2. अंग्रेजों की दमनकारी नीतियाँ और भारतीय असंतोष

- क्रांति के बाद अंग्रेजों ने भारतीयों पर और अधिक दमनकारी नीतियाँ लागू कीं।
- भारतीय राजाओं और जमींदारों को दबाने के लिए Divide and Rule (फूट डालो और राज करो) नीति अपनाई गई।
- इससे भारतीयों में अंग्रेजों के प्रति घृणा और स्वतंत्रता की आकांक्षा बढ़ी।

3. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (1885)

- 1857 के विद्रोह ने राजनीतिक संगठन बनाने की जरूरत को उजागर किया।
- 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई, जिसने बाद में स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया।

4. क्रांतिकारी आंदोलन को प्रेरणा

- 1857 की क्रांति से प्रेरित होकर भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, नेताजी सुभाष चंद्र बोस जैसे क्रांतिकारी आगे आए।
- 1905 में बंगाल विभाजन, 1919 में जलियांवाला बाग हत्याकांड और 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन इसी संघर्ष का हिस्सा बने।

5. भारतीय सेना में राष्ट्रीयता की भावना

- 1857 के विद्रोह में भारतीय सैनिकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।
- बाद में भारतीय सेना में भी स्वतंत्रता संग्राम के प्रति सहानुभूति बढ़ी, जिसका असर 1946 के नेवी विद्रोह में दिखा।

**प्रारंभिक राष्ट्रवाद (1885-1905)**

1885 से 1905 का काल भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का प्रारंभिक राष्ट्रवाद (Moderate Nationalism) चरण था। इस दौरान भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) की स्थापना हुई और राजनीतिक चेतना का विकास हुआ।

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) की स्थापना (1885)

- 28 दिसंबर 1885 को ए. ओ. ह्यूम की पहल पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।
- इसका उद्देश्य भारतीयों को संवैधानिक और शांतिपूर्ण तरीकों से अधिकार दिलाना था।

2. राजनीतिक चेतना और राष्ट्रवाद का उदय

- कांग्रेस ने भारतीयों को राजनीतिक रूप से संगठित किया और उनके अधिकारों की माँग की।
- राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ावा मिला और पूरे भारत में अंग्रेजों के खिलाफ एकजुटता बढ़ी।

3. नरमपंथी नेताओं की भूमिका

- इस दौर में कांग्रेस नरमपंथी (Moderates) थी और ब्रिटिश सरकार से संवैधानिक सुधारों की माँग कर रही थी।
- प्रमुख नेता – दादाभाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता, सुरेंद्रनाथ बनर्जी।
- दादाभाई नौरोजी ने "Drain of Wealth" (धन के निष्कासन का सिद्धांत) दिया, जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था के शोषण की सच्चाई उजागर हुई।

4. सामाजिक और आर्थिक सुधारों की माँग

- कांग्रेस ने नौकरी में भारतीयों की भागीदारी, प्रेस की स्वतंत्रता, उच्च शिक्षण संस्थान की माँग की।
- इसने भारतीयों को आर्थिक शोषण और ब्रिटिश नीतियों के प्रति जागरूक किया।

5. उग्र राष्ट्रवाद की नींव पड़ी

- नरमपंथियों की नीतियों से असंतोष के कारण 1905 के बाद उग्र राष्ट्रवाद (Extremist Nationalism) का उदय हुआ।
- उग्र राष्ट्रवाद (1905-1919) और क्रांतिकारी गतिविधियाँ (1907-1919) का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रभाव (संक्षेप में)

1905 से 1919 तक का समय भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उग्र राष्ट्रवाद (Extremist Nationalism) और क्रांतिकारी गतिविधियों के उदय का था। इस दौरान राष्ट्रवादियों ने अंग्रेजों के खिलाफ कठोर संघर्ष किया और स्वतंत्रता संग्राम को नई दिशा दी।

1. उग्र राष्ट्रवाद (1905-1919)

- बंगाल विभाजन (1905) के विरोध में स्वदेशी आंदोलन शुरू हुआ।
- बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चंद्र पाल (लाल-बाल-पाल) ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ उग्र आंदोलन किए।
- "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है" – बाल गंगाधर तिलक का नारा बना।
- ब्रिटिश सामानों के बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा को बढ़ावा दिया गया।

**परिणाम:**

- भारतीयों में राष्ट्रवाद की भावना और अधिक मजबूत हुई।
- कांग्रेस में नरमपंथी और गरमपंथी गुट बने (1907, सूरत विभाजन)।
- ब्रिटिश सरकार को 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द करना पड़ा।

2. क्रांतिकारी गतिविधियाँ (1907-1919)

- 1907 के बाद कई क्रांतिकारी संगठनों का उदय हुआ – अनुशीलन समिति, युगांतर दल, गदर पार्टी।
- भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, बटुकेश्वर दत्त, खुदीराम बोस, अशफाक उल्ला खां जैसे क्रांतिकारी सक्रिय हुए।
- अंग्रेजी शासन के खिलाफ सशस्त्र क्रांति की योजना बनी।
- 1919 में जलियांवाला बाग हत्याकांड ने क्रांतिकारी आंदोलनों को और तेज कर दिया।

**परिणाम:**

- ब्रिटिश सरकार क्रांतिकारियों से डरने लगी और दमनकारी नीतियाँ अपनाईं।
- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में युवाओं की भागीदारी बढ़ी।
- गांधीजी के नेतृत्व में 1919 के बाद अहिंसक आंदोलन को गति मिली।
- तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चंद्र पाल (लाल-बाल-पाल) जैसे नेता सामने आए।

**गांधी युग**

महात्मा गांधी के नेतृत्व में 1917 से 1947 तक भारतीय स्वतंत्रता संग्राम ने एक नई दिशा ली। उन्होंने अहिंसा और सत्याग्रह को अपना मुख्य हथियार बनाया और जनसहभागिता को बढ़ावा दिया। गांधी युग के प्रमुख आंदोलन निम्नलिखित हैं:

चंपारण सत्याग्रह (1917)

चंपारण सत्याग्रह महात्मा गांधी का भारत में पहला सफल सत्याग्रह आंदोलन था। यह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में किसानों के अधिकारों की रक्षा और ब्रिटिश शोषण के खिलाफ संघर्ष का महत्वपूर्ण उदाहरण बना।

बिहार के चंपारण जिले में नील की जबरन खेती (तीनकठिया प्रथा) किसानों के लिए बड़ी समस्या थी।

- अंग्रेज नील किसानों से अन्यायपूर्ण कर वसूलते थे और उनकी उपज का उचित मूल्य नहीं देते थे।
- राजकुमार शुक्ल के निमंत्रण पर महात्मा गांधी ने 1917 में चंपारण का दौरा किया और किसानों की समस्याओं को समझा।
- गांधीजी ने शांतिपूर्ण और अहिंसक सत्याग्रह किया।
- ब्रिटिश सरकार ने गांधीजी को चंपारण छोड़ने का आदेश दिया, लेकिन उन्होंने आज्ञा न मानकर सत्याग्रह जारी रखा।
- ब्रिटिश सरकार को झुकना पड़ा और एक जाँच समिति बनाई गई, जिसमें गांधीजी भी शामिल हुए।
- 1918 में तीनकठिया प्रथा को समाप्त कर दिया गया और किसानों को राहत मिली।
- गांधीजी के नेतृत्व की पहली सफलता: चंपारण सत्याग्रह ने गांधीजी को भारतीय राजनीति में मजबूत नेता के रूप में स्थापित किया।
- सत्याग्रह और अहिंसा की जीत: अहिंसा के माध्यम से अन्याय के खिलाफ लड़ने का यह पहला बड़ा उदाहरण था।
- किसानों की राजनीतिक भागीदारी: किसानों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ आवाज उठाना सीखा, जिससे आगे के आंदोलनों में उनकी भागीदारी बढ़ी।
- राष्ट्रीय आंदोलन को दिशा मिली: चंपारण के बाद असहयोग आंदोलन (1920) और अन्य सत्याग्रहों को गति मिली।

1. असहयोग आंदोलन (1920-1922)

कारण: जलियांवाला बाग हत्याकांड (1919), रॉलेट एक्ट, खिलाफत आंदोलन।

मुख्य विशेषताएँ:

- ब्रिटिश स्कूल, कॉलेज, अदालतों और सरकारी नौकरियों का बहिष्कार।
- विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार और स्वदेशी वस्त्रों को अपनाना।

समाप्ति: चौरी-चौरा कांड (1922) में हिंसा के बाद गांधीजी ने आंदोलन वापस लिया।

प्रभाव:

- जनता पहली बार बड़े पैमाने पर स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी।
- भारतीयों में ब्रिटिश शासन के प्रति असहयोग की भावना मजबूत हुई।
- कांग्रेस को ग्रामीण जनता का समर्थन मिला।

### 2. सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-1934)

कारण: साइमन कमीशन (1928) का विरोध, नेहरू रिपोर्ट (1928) की उपेक्षा।

मुख्य विशेषताएँ:

- दांडी मार्च (12 मार्च 1930) – नमक कानून तोड़कर सत्याग्रह।
- करों का भुगतान न करना और ब्रिटिश कानूनों की अवहेलना।

समाप्ति: गांधी-इरविन समझौते (1931) के तहत आंदोलन समाप्त।

प्रभाव:

- पहली बार महिलाओं और किसानों की व्यापक भागीदारी।
- ब्रिटिश सरकार ने गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस को आमंत्रित किया।
- आंदोलन के कारण भारत सरकार अधिनियम 1935 पारित हुआ।

3. भारत छोड़ो आंदोलन (1942)

कारण: द्वितीय विश्व युद्ध (1939) में भारत को जबरन शामिल करना, क्रिप्स मिशन की असफलता (1942)।

मुख्य विशेषताएँ:

- 9 अगस्त 1942 – गांधीजी का "अंग्रेजों भारत छोड़ो" नारा।
- जनता द्वारा ब्रिटिश शासन के खिलाफ सशस्त्र और अहिंसक संघर्ष।

समाप्ति: अंग्रेजों ने दमनकारी नीतियाँ अपनाईं, गांधीजी और अन्य नेताओं को जेल में डाल दिया।

प्रभाव:

- अंग्रेजों को एहसास हुआ कि अब भारत में अधिक समय तक शासन करना संभव नहीं।
- द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्वतंत्रता की प्रक्रिया तेज हुई।
- 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिलने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

कैबिनेट मिशन योजना (1946)

- ब्रिटिश सरकार ने भारत को स्वतंत्र करने के लिए योजना बनाई।

माउंटबेटन योजना और भारत विभाजन (1947)

- 3 जून 1947 – लॉर्ड माउंटबेटन ने भारत विभाजन की योजना प्रस्तुत की।
- 14 अगस्त 1947 – पाकिस्तान बना।
- 15 अगस्त 1947 – भारत स्वतंत्र हुआ।
- परिणाम: 200 वर्षों के संघर्ष के बाद भारत को आजादी मिली, लेकिन देश विभाजित हुआ।

**निष्कर्ष**

1857 से 1947 तक का राष्ट्रीय आंदोलन विभिन्न चरणों से गुजरा – प्रथम स्वतंत्रता संग्राम (1857), कांग्रेस का उदय (1885), उग्र राष्ट्रवाद (1905-1919), गांधीवादी आंदोलन (1919-1942) और अंततः स्वतंत्रता (1947)। यह आंदोलन केवल राजनीतिक संघर्ष नहीं था, बल्कि यह सामाजिक और आर्थिक सुधारों का भी प्रतीक था।

## b. विभिन्न भू–राजस्व नीतियों ने भारत की कृषि अर्थव्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित किया तथा यह नीतियां कृषक आंदोलनों के लिए जिम्मेदार थी?

ब्रिटिश शासन के दौरान लागू की गई **भू-राजस्व प्रणालियों** का उद्देश्य सरकार के लिए अधिकतम राजस्व वसूली सुनिश्चित करना था। हालाँकि, इन नीतियों ने भारतीय **कृषि अर्थव्यवस्था** को गंभीर रूप से प्रभावित किया। किसानों का शोषण बढ़ा, पारंपरिक कृषि पद्धतियाँ बाधित हुईं, और आर्थिक असमानता बढ़ी।

**मुख्य भू-राजस्व प्रणालियाँ और उनके प्रभाव**

### 1. स्थायी बंदोबस्त (Permanent Settlement) – 1793

**परिचय:**

- इसे **लॉर्ड कॉर्नवालिस** ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा में लागू किया।
- इस प्रणाली में **जमींदारों** को स्थायी रूप से **भूमि का मालिक** बनाया गया और उन्हें ब्रिटिश सरकार को **निश्चित कर** देना होता था।

**कृषि अर्थव्यवस्था पर प्रभाव:**

- **किसानों का शोषण:** जमींदारों ने किसानों से अत्यधिक कर वसूला, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हुई।
- **कृषि उत्पादकता पर नकारात्मक प्रभाव:** चूँकि कर स्थायी था, जमींदारों को कृषि सुधार में कोई रुचि नहीं थी।
- **ऋणग्रस्तता और कर्ज़:** किसानों को कर चुकाने के लिए साहूकारों से कर्ज़ लेना पड़ा, जिससे वे धीरे-धीरे **ऋण के बोझ** तले दब गए।
- **भुखमरी और पलायन:** किसान भूमि छोड़कर अन्य क्षेत्रों में पलायन करने लगे, जिससे गाँवों की **आर्थिक संरचना कमजोर** हुई।

### 2. रैयतवाड़ी प्रणाली (Ryotwari System) – 1820

**परिचय:**

- इसे **थॉमस मुनरो** और **रीड** ने मद्रास तथा बॉम्बे में लागू किया।
- इसमें किसान को सीधे **भूमि का मालिक** माना गया और उसे सरकार को सीधे कर देना था।

**कृषि अर्थव्यवस्था पर प्रभाव:**

- **अत्यधिक कर बोझ:** किसानों को अपनी कुल उपज का 50-60% कर के रूप में देना पड़ता था, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई।
- **कर्ज़ का बढ़ना:** किसानों को कर चुकाने के लिए **सूदखोरों से ऋण** लेना पड़ता था, जिससे वे **कर्ज़ के जाल** में फँस गए।
- **फसल की अस्थिरता:** सूखा या बाढ़ आने पर भी कर वसूली होती थी, जिससे कई किसानों को अपनी जमीन छोड़नी पड़ी।
- **नकदी फसलों की ओर झुकाव:** किसानों को उच्च कर चुकाने के लिए नकदी फसलें (जैसे - कपास, नील) उगाने के लिए मजबूर किया गया, जिससे खाद्य उत्पादन में कमी आई।

**3. महालवारी प्रणाली (Mahalwari System) – 1833**

**परिचय:**

- इसे **लॉर्ड विलियम बेंटिंक** ने उत्तर-पश्चिमी प्रांत, पंजाब और मध्य भारत में लागू किया।
- इसमें गाँव की पूरी भूमि को एक इकाई माना गया और कर की ज़िम्मेदारी गाँव के मुखिया (लंबरदार) की थी।

**कृषि अर्थव्यवस्था पर प्रभाव:**

- **गाँव आधारित कर वसूली:** गाँव के मुखिया राजस्व वसूली के लिए किसानों पर अधिक दबाव डालते थे, जिससे उनका शोषण बढ़ा।
- **कृषि में अस्थिरता:** कर दर समय-समय पर बदली जाती थी, जिससे किसानों के लिए आर्थिक योजना बनाना कठिन हो गया।
- **मध्यस्थों का शोषण:** महाजन और जमींदार किसानों से अधिक कर वसूलते और उन्हें सूदखोरी के जाल में फँसा देते थे।

**ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों के व्यापक प्रभाव:**

**1. पारंपरिक कृषि व्यवस्था का विनाश**

- पहले भारतीय कृषि **आत्मनिर्भर** थी और किसान अपनी जरूरत के अनुसार अनाज उगाते थे।
- ब्रिटिश नीतियों के कारण किसान **नकदी फसलों** (जैसे - नील, कपास, चाय) की खेती करने को मजबूर हुए, जिससे **खाद्य संकट** उत्पन्न हुआ
- **कृषि पर प्रत्यक्ष प्रभाव:**

**(i) कृषि उत्पादन का व्यापारीकरण (Commercialization of Agriculture)**

- भू-राजस्व नीतियों ने किसानों को **नकदी फसलों (जैसे नील, कपास, चाय, तंबाकू)** की खेती करने के लिए मजबूर किया।
- खाद्य फसलों का उत्पादन घटने से **भुखमरी और अकाल** की स्थिति बनी।

- किसानों को अपनी उपज बाजार में बेचना पड़ता था, जिससे वे **बिचौलियों और महाजनों** के शोषण का शिकार हुए।

**(ii) कृषि पर बढ़ता कर भार**

- ब्रिटिश नीतियों में कर की दरें बहुत अधिक थीं:
- **स्थायी बंदोबस्त** में कर **स्थायी रूप से तय** कर दिया गया था, लेकिन जमींदार किसानों से मनमाना कर वसूलते थे।
- **रैयतवाड़ी प्रणाली** में किसानों को **50-60% तक कर** देना पड़ता था, जिससे वे **कर्जदार** हो गए।
- **महालवारी प्रणाली** में भी पूरे गाँव को कर चुकाने का दायित्व था, जिससे सामूहिक रूप से किसानों पर दबाव बढ़ा।

**(iii) परंपरागत कृषि व्यवस्था का विनाश**

- किसान पहले **कृषि आधारित आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था** में काम करते थे, लेकिन ब्रिटिश नीतियों ने उन्हें **बाजार आधारित अर्थव्यवस्था** में धकेल दिया।
- ब्रिटिश नीति के कारण स्थानीय **उद्योग और हस्तकला बर्बाद हो गए**, जिससे कृषि पर अधिक निर्भरता बढ़ी।
- **सिंचाई और कृषि सुधारों की उपेक्षा** की गई, जिससे कृषि पिछड़ती गई।

**2. कृषकों की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव:**

**(i) ऋणग्रस्तता (Indebtedness) और भूमिहीनता**

- अधिक कर वसूली के कारण किसान साहूकारों से **कर्ज लेने को मजबूर** हो गए।
- समय पर कर न चुकाने की स्थिति में **किसानों की भूमि नीलाम कर दी जाती थी**।

**ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियों से प्रेरित किसान आंदोलनों**

ब्रिटिश सरकार द्वारा लागू की गई भू-राजस्व नीतियों ने भारतीय किसानों का **भारी शोषण** किया। इन नीतियों के कारण बढ़ते कर, ऋणग्रस्तता, भूमिहीनता और जबरन वसूली से परेशान किसानों ने कई **आंदोलनों** को जन्म दिया। ब्रिटेिश शासन के दौरान हुए ये किसान आंदोलन मुख्य रूप से **अत्यधिक कराधान, बिचौलियों के शोषण और आर्थिक संकट** के विरोध में थे।

**1. ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियाँ और किसान आंदोलनों की प्रेरणा**

**(i) भारी कर और जबरन वसूली**

- **स्थायी बंदोबस्त (1793)** में जमींदारों को कर संग्रह का अधिकार दिया गया, जिन्होंने किसानों से अत्यधिक कर वसूला।

- **रैयतवाड़ी प्रणाली** (1820) में किसान सीधे सरकार को कर देते थे, लेकिन कर की दरें इतनी अधिक थीं कि वे साहूकारों से कर्ज लेने को मजबूर हो गए।
- **महालवारी प्रणाली** (1833) में पूरे गाँव पर कर का बोझ डाला गया, जिससे सामूहिक असंतोष बढ़ा।

🔸 **परिणाम:** किसानों ने **करों में कमी और भूमि अधिकारों** की मांग करते हुए कई आंदोलनों की शुरुआत की।

**(ii) ऋणग्रस्तता और भूमिहीनता**

- अधिक करों और अकालों के कारण किसान **ऋणग्रस्त हो गए** और अपनी जमीनें खोने लगे।
- साहूकारों और महाजनों का प्रभाव बढ़ गया, जिन्होंने किसानों की जमीनें जब्त कर लीं।

🔸 **परिणाम:** किसानों ने **साहूकारों और जमींदारों के खिलाफ विद्रोह** किए।

**(iii) जबरन नकदी फसल की खेती**

- किसानों को **नकदी फसलों (नील, कपास, चाय, तंबाकू)** की खेती के लिए मजबूर किया गया, जबकि उन्हें इससे बहुत कम मुनाफा मिलता था।
- खाद्य फसलों की खेती घटने से **अकाल और भुखमरी** की स्थिति उत्पन्न हुई।

🔸 **परिणाम:** किसानों ने **नील विद्रोह (1859-60) और अन्य आंदोलनों** में भाग लिया।

**2. प्रमुख किसान आंदोलन जो ब्रिटिश भू-राजस्व नीति से प्रेरित थे**

**(i) नील विद्रोह (1859-60)**

- **स्थान:** बंगाल
- **कारण:** ब्रिटिश नील व्यापारियों ने किसानों को जबरदस्ती नील की खेती करने के लिए मजबूर किया।
- **परिणाम:** किसानों के भारी विरोध के बाद **नील की खेती पर प्रतिबंध** लगाना पड़ा।

**(ii) पाबना विद्रोह (1873-76)**

- **स्थान:** बंगाल
- **कारण:** जमींदारों द्वारा अधिक कर वसूली और किसानों को भूमि से बेदखल करना।
- **परिणाम:** किसानों ने जमींदारों के खिलाफ कानूनी लड़ाई लड़ी और आंदोलन सफल रहा।

**(iii) दक्कन किसान विद्रोह (1875)**

- **स्थान:** महाराष्ट्र
- **कारण:** अत्यधिक कर और साहूकारों द्वारा किसानों की भूमि पर कब्जा।
- **परिणाम:** सरकार को **कृषि ऋण राहत कानून** बनाना पड़ा।

**(iv) चंपारण सत्याग्रह (1917)**

- **नेता:** महात्मा गांधी

- **स्थान:** बिहार
- **कारण:** किसानों को जबरन **तीन कठिया प्रथा** के तहत नील की खेती करनी पड़ती थी।
- **परिणाम:** गांधीजी के प्रयासों से यह **नील खेती प्रथा समाप्त हुई**।

**(v) खेड़ा सत्याग्रह (1918)**

- **स्थान:** गुजरात
- **नेता:** महात्मा गांधी
- **कारण:** अकाल के बावजूद किसानों से पूरा कर वसूला जा रहा था।
- **परिणाम:** सरकार को कर माफ करना पड़ा।

**(vi) बारदोली सत्याग्रह (1928)**

- **स्थान:** गुजरात
- **नेता:** वल्लभभाई पटेल
- **कारण:** ब्रिटिश सरकार ने करों में 22% वृद्धि कर दी थी।
- **परिणाम:** किसानों के विरोध के बाद कर वृद्धि वापस लेनी पड़ी।

**निष्कर्ष**

ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियाँ किसानों के लिए अत्यंत **अन्यायपूर्ण और शोषणकारी** थीं। इन नीतियों के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति **बिगड़ती गई**, जिससे वे बड़े पैमाने पर **किसान आंदोलनों** में शामिल हुए।

- 19वीं शताब्दी में ये आंदोलन **स्थानीय और छिटपुट** थे, लेकिन 20वीं शताब्दी में ये **राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम** का हिस्सा बन गए।
- गांधीजी के नेतृत्व में हुए आंदोलनों ने किसानों को **राजनीतिक चेतना** प्रदान की।
- अंततः, ये आंदोलन **1947 में भारत की स्वतंत्रता** के लिए प्रेरणा बने।

◆ **निष्कर्षतः, ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियाँ ही भारतीय किसान आंदोलनों की प्रमुख प्रेरणा बनीं।**

## 7.a. स्वामी सहजानंद सरस्वती और किसान आंदोलन

**किसान आंदोलन और स्वामी सहजानंद सरस्वती का योगदान**

1. किसान आंदोलन की पृष्ठभूमि

- भारत में औपनिवेशिक शासन के दौरान जमींदारी प्रथा और उच्च कर प्रणाली के कारण किसानों का शोषण बढ़ता गया।
- चंपारण सत्याग्रह (1917) की सफलता ने किसानों को संगठित होने और अन्याय के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा दी।

- बिहार में किसान आंदोलन को संगठित करने में स्वामी सहजानंद सरस्वती की प्रमुख भूमिका रही।

2. स्वामी सहजानंद सरस्वती: जीवन परिचय

- जन्म: 22 फरवरी 1889, ग़ाज़ीपुर, उत्तर प्रदेश।
- मूल नाम: नवल किशोर शर्मा।
- शिक्षा: संस्कृत और वेदों का अध्ययन।
- संन्यास: किशोरावस्था में ही संन्यासी बन गए और बाद में किसानों के संघर्ष से जुड़ गए।

3. किसान आंदोलन में भूमिका

(क) प्रारंभिक संघर्ष और किसान सभा की स्थापना

- किसानों की दुर्दशा को देखकर उन्होंने किसान आंदोलन को नेतृत्व प्रदान करने का संकल्प लिया।
- 1922-23 में 'बिहार किसान सभा' का गठन हुआ, लेकिन इसे सही दिशा 1928 में स्वामी सहजानंद सरस्वती ने दी।
- 4 मार्च 1928 को सोनपुर मेले में 'प्रांतीय किसान सभा' की स्थापना की गई।
- उन्होंने किसान आंदोलनों में "रोटी ही सच्चा भगवान है" का संदेश दिया और किसानों को सबसे बड़ा देवता माना।

(ख) किसानों की प्रमुख माँगें

1. जमींदारी प्रथा का उन्मूलन
2. मालगुजारी (कर) में कमी
3. काश्तकारों की बेदखली पर रोक
4. बकाश्त भूमि की वापसी
5. शुल्क और टैक्स में कटौती

(ग) किसान आंदोलन के प्रमुख चरण

1. मधुबनी किसान आंदोलन (1919) – स्वामी विद्यानंद ने किसानों को संगठित किया।
2. 1929 से किसान सभा का विस्तार – गया, हाजीपुर, पटना, भागलपुर आदि में किसान सभाएँ आयोजित हुईं।
3. 1930 का चौकीदारी कर विरोध आंदोलन – पूरे बिहार में यह आंदोलन सफल रहा।
4. 1932 में सविनय अवज्ञा आंदोलन में किसान आंदोलन की भागीदारी – किसानों की बढ़ती सक्रियता से आंदोलन उग्र हुआ।

4. अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना (1936)

- 1936 में लखनऊ में 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना हुई और स्वामी सहजानंद सरस्वती इसके पहले अध्यक्ष बने।
- प्रमुख नेता: एम.जी. रंगा, ई.एम.एस. नंबूदरीपाद, आचार्य नरेंद्र देव, राहुल सांकृत्यायन, राम मनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण, पंडित यदुनंदन शर्मा, पी. सुन्दरैया।
- किसान घोषणा पत्र जारी कर जमींदारी प्रथा समाप्त करने और किसानों का कर्ज माफ करने की माँग उठाई गई।

5. कांग्रेस और किसान आंदोलन का संबंध

- 1937 में कांग्रेस सरकार बनने पर स्वामी सहजानंद को उम्मीद थी कि कांग्रेस किसानों की समस्याओं को हल करेगी।
- कांग्रेस मंत्रिमंडल ने लगान दर कम करने और बकाश्त भूमि की वापसी के लिए कानून बनाया, लेकिन इसमें जमींदारों का प्रभाव अधिक था।
- किसान सभा के नेताओं ने इस कानून को अस्वीकार कर दिया, जिससे बकाश्त भूमि आंदोलन मुख्य मुद्दा बन गया।
- कांग्रेस से मोहभंग होने के बाद स्वामी सहजानंद का झुकाव साम्यवाद की ओर बढ़ा।

6. किसान आंदोलन की उग्रता और लाल झंडे का प्रतीक बनना

- अक्टूबर 1937 में किसान सभा ने लाल झंडे को अपना प्रतीक घोषित किया।
- स्वामी सहजानंद के नेतृत्व में किसान रैलियों में भीड़ कांग्रेस की सभाओं से कई गुना अधिक होने लगी।
- 1938 तक किसान सभा के सदस्यों की संख्या 1.5 लाख तक पहुँच गई।
- बिहटा (पटना) में 'सीताराम आश्रम' की स्थापना की, जो किसान आंदोलन का केंद्र बना।

7. नेताजी सुभाष चंद्र बोस और स्वामी सहजानंद

- नेताजी सुभाष चंद्र बोस के साथ कई किसान रैलियों में भाग लिया।
- स्वामी सहजानंद की गिरफ्तारी के विरोध में नेताजी ने 28 अप्रैल को 'ऑल इंडिया स्वामी सहजानंद दिवस' घोषित किया।
- भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (CPI) भी उन्हें अपना प्रेरणास्रोत मानती रही।

8. बाबा नागार्जुन और स्वामी सहजानंद

- बिहार के प्रसिद्ध लोक कवि बाबा नागार्जुन स्वामी सहजानंद से अत्यधिक प्रभावित थे।
- वे बिहटा आश्रम में जाकर स्वामी जी से मार्गदर्शन प्राप्त करते थे।

9. किसान आंदोलन का प्रभाव और स्वामी सहजानंद का योगदान

- स्वतंत्रता संग्राम में किसानों को एक राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित किया।
- किसानों के अधिकारों और जमींदारी प्रथा के अंत की दिशा में निर्णायक भूमिका निभाई।

- "कैसे लोगे मालगुजारी, लद जाएगा हमारी जिंदाबाद!" जैसे नारों से किसानों में चेतना जगाई।
- उनके आंदोलन ने स्वतंत्र भारत में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन का मार्ग प्रशस्त किया।

**निष्कर्ष**

स्वामी सहजानंद सरस्वती केवल एक संत नहीं, बल्कि भारतीय किसान आंदोलन के महानायक थे। उन्होंने न केवल किसानों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाई, बल्कि संगठित आंदोलन खड़ा कर जमींदारी प्रथा को उखाड़ने में अहम भूमिका निभाई। उनका संघर्ष, विचारधारा और संगठन कौशल भारतीय किसान आंदोलन के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा गया।

## b. मंजूषा चित्रकला के धार्मिक पक्ष

मंजूषा कला की उत्पत्ति और विकास

मंजूषा कला (Manjusha Art) भारत की एक विशिष्ट और प्राचीन कला शैली है, जो मुख्य रूप से बिहार राज्य के भागलपुर और इसके आसपास के क्षेत्रों में प्रचलित है। इस कला का संबंध बौद्ध धर्म से है, और यह कला शैली विशेष रूप से धार्मिक कथाओं, कथानकों, और लोककथाओं के चित्रण के लिए प्रसिद्ध है। "मंजूषा" शब्द संस्कृत के "मंजूषा" (Manjusha) से लिया गया है, जिसका अर्थ होता है "संदूक" या "डिब्बा", और यह कला शैली मुख्य रूप से सजावट वाले धार्मिक संदूकों के चित्रण में दिखाई देती है। यह कला मुख्य रूप से कागज पर की जाती है, जिसमें विभिन्न रंगों और रचनाओं के माध्यम से दृश्यात्मक रूप में बौद्ध और हिन्दू धार्मिक कथाएँ प्रस्तुत की जाती हैं।

**1. मंजूषा कला की उत्पत्ति (Origin of Manjusha Art)**

मंजूषा कला की उत्पत्ति का संबंध बिहार के भागलपुर जिले से माना जाता है, जहां यह कला शुरू हुई थी। भागलपुर क्षेत्र के आसपास के गाँवों में इस कला का मुख्य विकास हुआ था। यह कला शैली बौद्ध धर्म से प्रेरित होकर विकसित हुई, और यह उन समयों में बौद्ध धार्मिक मान्यताओं और दर्शन को प्रसारित करने का एक महत्वपूर्ण साधन बन गई।

यह माना जाता है कि मंजूषा कला का आरंभ प्राचीन काल में हुआ था, जब बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के धार्मिक ग्रंथों और कहानियों को चित्रित करने के लिए इस कला का प्रयोग किया गया। इसे विशेष रूप से उन पवित्र और धार्मिक संदूकों के चित्रण के रूप में देखा गया था, जिनका उपयोग पूजा-अर्चना में किया जाता था।

**लोककथाओं और परंपराओं का समावेश (Inclusion of Folklore and Traditions):**

मंजूषा कला का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह था कि समय के साथ इसमें लोककथाएँ, परंपराएँ, और समाज के विभिन्न पहलुओं को भी शामिल किया गया। इस कला में अब हिन्दू धार्मिक मिथकों जैसे रामायण, महाभारत, और विभिन्न देवी-देवताओं की कथाएँ चित्रित की जाने लगीं।

**आधुनिक समय में मंजूषा कला (Manjusha Art in Modern Times):**

समय के साथ मंजूषा कला में परिवर्तन आए और यह कला शहरी क्षेत्रों में भी फैलने लगी। अब यह कला न केवल धार्मिक संदूकों, बल्कि कैनवास, कागज, और अन्य आधुनिक माध्यमों पर भी की जाने लगी। कला के विषय और शैलियों में विविधता बढ़ी, और मंजूषा कला को एक महत्वपूर्ण पारंपरिक कला रूप के रूप में पुनर्जीवित किया गया।

**3. मंजूषा कला के प्रमुख तत्व (Key Elements of Manjusha Art)**

• चित्रकला और प्रतीकात्मकता (Painting and Symbolism): मंजूषा कला में चित्रों का प्रयोग मुख्य रूप से प्रतीकात्मक होता है, जहां विभिन्न रंग और रूपों के माध्यम से धार्मिक या सांस्कृतिक संदेशों को प्रस्तुत किया जाता है।

• विविध रंगों का प्रयोग (Use of Colors): इस कला में प्रचुर मात्रा में उज्जवल और चमकीले रंगों का प्रयोग किया जाता है, जैसे लाल, पीला, हरा, नीला, और काले रंग, जो चित्रों में जीवन और ऊर्जा का अहसास कराते हैं।

• धार्मिक और सांस्कृतिक विषय (Religious and Cultural Themes): मंजूषा कला में मुख्य रूप से धार्मिक और सांस्कृतिक विषयों को चित्रित किया जाता है, जिनमें बौद्ध धर्म, हिन्दू धर्म, और लोककथाओं के पात्र शामिल होते हैं। इसके अंतर्गत बिहुला-विषहरी की दंत कथाओं का चरित्र चित्रण होता है। यह मुख्यतः भागलपुर से प्रारंभ हुई थी। मंजूषा कला एक श्रृंखलाबद्ध चित्रकला पद्धत्ति है। मंजूषा कला के प्रमुख चिह्न- साँप, चंपा फूल, सूर्य, कमल, हाथी, घोड़ा, मोर, मैना, कछुआ, मछली, पेड़, कलश, तीर-धनुष, शिवलिंग हैं।

• रचनात्मकता और डिजाइन (Creativity and Design): मंजूषा कला के डिजाइनों में अद्वितीयता और रचनात्मकता का अद्भुत मेल देखा जाता है, जहां कलाकार विभिन्न आकारों, रूपों, और रेखाओं के माध्यम से दृश्यात्मक कहानी प्रस्तुत करते हैं।

### 4. मंजूषा कला का सांस्कृतिक महत्व (Cultural Importance of Manjusha Art)

मंजूषा कला न केवल भारतीय कला का महत्वपूर्ण हिस्सा है, बल्कि यह क्षेत्रीय संस्कृति और इतिहास का भी अभिन्न हिस्सा है। यह कला शैली धार्मिक, सांस्कृतिक, और सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को जीवित रखने में मदद करती है।

यह कला शैली न केवल सांस्कृतिक धरोहर के रूप में महत्वपूर्ण है, बल्कि यह समाज के लोक जीवन, धार्मिक मान्यताओं, और सामाजिक विचारों को भी एक नई पहचान देती है।

मंजूषा कला के धार्मिक पक्ष

मंजूषा कला की उत्पत्ति और विकास धार्मिक संदर्भों से जुड़ा हुआ है, विशेष रूप से हिन्दू और बौद्ध धर्म से। इस कला में धार्मिक और आध्यात्मिक प्रतीकों, कथाओं और दृश्यों को चित्रित किया जाता है, जो इसे न केवल एक कला रूप बल्कि धार्मिक अभिव्यक्ति का भी रूप प्रदान करता है। मंजूषा कला का मुख्य उद्देश्य धार्मिक शिक्षा और मान्यताओं को प्रस्तुत करना होता है, और इस कला की गहरी धार्मिक जड़ें हैं।

### 1. बौद्ध धर्म से संबंध (Connection with Buddhism)

मंजूषा कला का एक प्रमुख पहलू बौद्ध धर्म से जुड़ा हुआ है। माना जाता है कि यह कला शैली पहले बौद्ध धर्म के प्रचार और संदेशों को चित्रित करने के लिए विकसित हुई थी। मंजूषा कला में भगवान बुद्ध, बोधिसत्व, और उनके उपदेशों को चित्रित किया जाता है। बौद्ध धर्म में "मंजूषा" शब्द का अर्थ "संदूक" या "कंटेनर" होता है, और यह संदूक बौद्ध धार्मिक शिक्षाओं और सिद्धांतों को संजोने का प्रतीक होता है।

• धार्मिक पात्रों का चित्रण: मंजूषा कला में बौद्ध धर्म के महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों को चित्रित किया जाता है, जैसे भगवान बुद्ध, बोधिसत्व, और उनके शिष्य। इन चित्रों के माध्यम से बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धांतों को जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

• धार्मिक कथाएँ: बौद्ध धर्म के धार्मिक कथाएँ और उपदेश भी मंजूषा कला के प्रमुख विषय होते हैं। उदाहरण के रूप में, बुद्ध की निर्वाण, उनका जन्म, और उनके उपदेशों को चित्रित करने वाले दृश्य आमतौर पर देखे जाते हैं।

**2. हिन्दू धर्म से संबंध (Connection with Hinduism)**

हालाँकि मंजूषा कला का मूल बौद्ध धर्म से है, परंतु समय के साथ इस कला ने हिन्दू धर्म की धार्मिक कथाओं और प्रतीकों को भी अपनी अभिव्यक्ति का हिस्सा बना लिया। हिन्दू धर्म के विभिन्न देवताओं, देवी-देवताओं, और उनके अनगिनत रूपों का चित्रण मंजूषा कला में किया जाता है।

• रामायण और महाभारत के चित्रण:

मंजूषा कला में हिन्दू धर्म के महाकाव्य "रामायण" और "महाभारत" के प्रमुख पात्रों को चित्रित किया जाता है। उदाहरण के लिए, भगवान राम, सीता, रावण, अर्जुन, कृष्ण आदि के दृश्य इस कला में देखे जाते हैं।

• देवताओं और देवी-देवताओं की चित्रकारी:

हिन्दू धर्म के प्रमुख देवताओं जैसे शिव, विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती, गणेश आदि की भी मंजूषा कला में विस्तृत चित्रकला की जाती है। इन देवताओं और देवियों के विभिन्न रूप और शक्तियों को कलाकार अपनी कला के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

**3. प्रतीकात्मकता और धार्मिक छायाएँ (Symbolism and Religious Allegories)**

मंजूषा कला में प्रतीकात्मकता का विशेष महत्व है। इस कला के माध्यम से कलाकार धार्मिक संदेशों को चित्रों और रंगों के माध्यम से व्यक्त करते हैं।

**धार्मिक प्रतीक (Religious Symbols):**

इसमें मुख्य रूप से धार्मिक प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है जैसे सूर्य, चंद्रमा, कमल, त्रिशूल, शिवलिंग, आदि। इन प्रतीकों के माध्यम से धार्मिक विचारों और सिद्धांतों को दर्शाया जाता है।

• नैतिक शिक्षा (Moral Lessons):

धार्मिक कथाओं और दृश्यावलियों के माध्यम से नैतिक शिक्षा भी दी जाती है। उदाहरण के लिए, रामायण में धर्म, सत्य और आदर्श जीवन की महत्वपूर्ण शिक्षाएँ दी जाती हैं। इस प्रकार, मंजूषा कला को धार्मिक नैतिकता के प्रसार का एक साधन माना जा सकता है।

**4. विभिन्न त्योहारों और पूजा विधियों का चित्रण (Depiction of Religious Festivals and Rituals)**

मंजूषा कला में हिन्दू और बौद्ध धार्मिक त्योहारों और पूजा विधियों का भी चित्रण किया जाता है। जैसे दीपावली, दशहरा, कुंभ मेला, बुद्ध पूर्णिमा आदि के दृश्य मंजूषा कला में रचनात्मक तरीके से देखे जाते हैं।

• दीपावली और दुर्गा पूजा:

इन त्योहारों के धार्मिक आयोजन और पूजाएँ, जैसे दुर्गा माता की पूजा, इस कला में विशेष रूप से चित्रित होते हैं। ये दृश्य दर्शकों को भारतीय धार्मिक संस्कृति से जोड़ते हैं।

**5. मंजूषा कला और धार्मिक संप्रदायों के मिलाजुला प्रभाव (Blending of Religious Sects in Manjusha Art)**

मंजूषा कला में बौद्ध और हिन्दू धर्म के तत्वों का सम्मिलन होता है। समय के साथ इस कला में धार्मिक विविधता देखने को मिलती है। जहाँ बौद्ध धर्म के सिद्धांतों और भगवान बुद्ध के चित्रण होते हैं, वहीं हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं और महाकाव्यों के चित्रण भी होते हैं।

**मंजूषा कला की प्रासंगिकता (Relevance of Manjusha Art)**

1. सांस्कृतिक धरोहर: मंजूषा कला भारतीय सांस्कृतिक धरोहर का अभिन्न हिस्सा है। यह कला लोकजीवन, मिथक, धार्मिक विश्वास और आदिवासी परंपराओं का प्रतिबिंब है। इसका अनुसरण और संरक्षण करना भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाए रखने के लिए आवश्यक है।

2. धार्मिक और आध्यात्मिक महत्व: मंजूषा कला में प्रमुख रूप से देवी-देवताओं, खासकर बिशारी देवी और सर्प की पूजा का चित्रण होता है। इसे धार्मिक रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इस कला में जीवन के कई पहलुओं जैसे सुरक्षा, समृद्धि और पुनर्जन्म की धारणा को प्रस्तुत किया जाता है।

3. शास्त्रीय कला के रूप में सम्मान: मंजूषा कला भारतीय शास्त्रीय कला रूपों के बराबर सम्मान की हकदार है। इसकी विशेषताओं में न केवल रंगों का सटीक प्रयोग है, बल्कि इसके द्वारा व्यक्त किए गए संदेश भी अतुलनीय हैं।

4. समाज में जागरूकता और शिक्षा: मंजूषा कला लोक शिक्षा का एक बेहतरीन माध्यम रही है। इसके माध्यम से समाज में धार्मिक, सांस्कृतिक और पारंपरिक संदेशों को फैलाया गया। यह कला न केवल भव्यता का प्रतीक है, बल्कि समाज की विभिन्न परंपराओं और मूल्यों का भी संवेदनशीलता से प्रतिनिधित्व करती है।

**मंजूषा कला को पुनर्जीवित करने के उपाय (Ways to Revive Manjusha Art)**

1. शिक्षा और प्रशिक्षण: मंजूषा कला को पुनर्जीवित करने का सबसे प्रभावी तरीका है इसकी शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था करना। यह सुनिश्चित करना कि नए कलाकार और युवा पीढ़ी इस कला के बारे में जानकारी प्राप्त करें और उसे अपनाएं, बहुत महत्वपूर्ण है। स्कूलों और कला संस्थानों में मंजूषा कला की कक्षाएँ और कार्यशालाएँ आयोजित की जा सकती हैं।

2. आधुनिक तकनीकों का समावेश: मंजूषा कला को आधुनिक कला और डिज़ाइन तकनीकों से जोड़ा जा सकता है। डिजिटल कला, प्रिंट मीडिया और फैशन डिज़ाइन जैसे क्षेत्रों में इसका समावेश कर कला को एक नई पहचान दी जा सकती है। इससे युवा पीढ़ी में इस कला की ओर आकर्षण बढ़ेगा।

3. फेस्टिवल्स और कला प्रदर्शनी: विभिन्न कला महोत्सवों और प्रदर्शनों का आयोजन करके मंजूषा कला को पुनर्जीवित किया जा सकता है। इससे न केवल कला की लोकप्रियता बढ़ेगी, बल्कि कलाकारों को भी एक मंच मिलेगा जहां वे अपनी कृतियों का प्रदर्शन कर सकें।

4. प्रचार और संरक्षण: मंजूषा कला के संरक्षण के लिए सरकार और गैर सरकारी संगठनों द्वारा सक्रिय कदम उठाए जाने चाहिए। इस कला के कलाकारों को प्रोत्साहन देना और उनकी कृतियों को संग्रहालयों, कला दीर्घाओं और ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म पर प्रदर्शित करना इसे जीवित रखने में मदद करेगा।

5. सामाजिक मीडिया और डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग: सोशल मीडिया और इंटरनेट का इस्तेमाल करके मंजूषा कला के बारे में जागरूकता फैलायी जा सकती है। डिजिटल मीडिया पर कला के चित्र और वीडियो पोस्ट करने से न केवल कला की पहचान बढ़ेगी, बल्कि इसे वैश्विक स्तर पर फैलाने में भी मदद मिलेगी।

6. परंपराओं और स्थानीय समुदायों का समर्थन: मंजूषा कला की जीवित रखने के लिए स्थानीय समुदायों का समर्थन अत्यंत महत्वपूर्ण है। अगर कलाकारों और शिल्पकारों को स्थानीय स्तर पर आर्थिक और सामाजिक सहायता मिलती है, तो वे अपनी कला को संरक्षित और विकसित कर सकेंगे।

7. वाणिज्यिक प्लेटफ़ॉर्म और विपणन: मंजूषा कला को विभिन्न वाणिज्यिक उत्पादों में शामिल किया जा सकता है जैसे कि हैंडिक्राफ्ट, टेक्सटाइल (साड़ियों, दुपट्टों), गहनों, और घर के सजावटी सामानों में। इस कला को उत्पादों में जोड़ने से न केवल कला को पुनर्जीवित किया जा सकता है, बल्कि कलाकारों को भी आर्थिक लाभ मिलेगा।

**निष्कर्ष (Conclusion)**

मंजूषा कला भारतीय कला की एक अद्वितीय शैली है, जो धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताओं की गहरी जड़ें रखती है। यह कला आज भी बिहार के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित है और इसमें न केवल धार्मिक कथाएँ, बल्कि लोककथाएँ और सांस्कृतिक परंपराओं का भी सुंदर चित्रण किया जाता है। मंजूषा कला का विकास एक लंबी प्रक्रिया है, और यह कला समय के साथ-साथ बदलती गई है, जिससे यह आज भी समृद्ध और जीवित धरोहर के रूप में बनी हुई है।

## c. स्वदेशी आंदोलन

स्वदेशी आंदोलन (Swadeshi Movement)

स्वदेशी आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। यह आंदोलन ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ भारतीय समाज में आत्मनिर्भरता और स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से शुरू हुआ था। यह आंदोलन विशेष रूप से बंगाल में 1905 में विभाजन के विरोध में सामने आया।

**स्वदेशी आंदोलन का प्रारंभ (Origin of Swadeshi Movement)**

**बंगाल विभाजन (Partition of Bengal)**

स्वदेशी आंदोलन का आरंभ 1905 में बंगाल के विभाजन के खिलाफ विरोध के रूप में हुआ। ब्रिटिश सरकार ने बंगाल को सांप्रदायिक आधार पर विभाजित किया था, जिससे भारतीय समाज में असंतोष बढ़ गया। इस विभाजन के उद्देश्य को समझते हुए, भारतीय नेताओं ने स्वदेशी आंदोलन का आह्वान किया।

**लॉर्ड कर्जन का विभाजन (Lord Curzon's Partition)**

ब्रिटिश गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया, जिसे भारतीय नेताओं ने सांप्रदायिक दृष्टिकोण से विभाजन के रूप में देखा। इसका उद्देश्य हिन्दू और मुसलमानों के बीच फूट डालना था, जिससे अंग्रेजी शासन को लंबे समय तक मजबूत किया जा सके।

स्वदेशी आंदोलन के प्रमुख उद्देश्य (Main Objectives of the Swadeshi Movement)

1. ब्रिटिश शासन का विरोध:

स्वदेशी आंदोलन का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष करना था। यह आंदोलन ब्रिटिश वस्त्रों और सामान का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्त्रों का उपयोग करने पर केंद्रित था।

2. आत्मनिर्भरता (Self-Reliance):

इस आंदोलन का उद्देश्य भारतीय समाज को आत्मनिर्भर बनाना था। इसका उद्देश्य भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहन देना और ब्रिटिश वस्त्र उद्योग से मुकाबला करना था।

3. सांप्रदायिक एकता (Communal Harmony):

बंगाल विभाजन के खिलाफ आंदोलन में हिंदू और मुस्लिम दोनों वर्गों को एकजुट किया गया था। इसका उद्देश्य भारतीय समाज को एकजुट करना और साम्राज्यवादी नीति के खिलाफ खड़ा करना था।

**स्वदेशी आंदोलन के प्रमुख नेता (Leaders of the Swadeshi Movement)**

1. बाल गंगाधर तिलक (Bal Gangadhar Tilak): तिलक ने स्वदेशी आंदोलन को प्रोत्साहित किया और अपने पत्र "केसरी" के माध्यम से लोगों को जागरूक किया। उन्होंने आंदोलन को जन-आंदोलन में बदलने का प्रयास किया।

2. बिपिन चंद्र पाल (Bipin Chandra Pal): बिपिन चंद्र पाल ने स्वदेशी आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और स्वदेशी उत्पादों का उपयोग करने का आह्वान किया। उन्होंने भारतीय समाज में जागरूकता फैलाने के लिए भाषण और लेखन के माध्यम से अपनी भूमिका निभाई।

3. लाला लाजपत राय (Lala Lajpat Rai): लाला लाजपत राय ने पंजाब में स्वदेशी आंदोलन को मजबूत किया और ब्रिटिश शासन के खिलाफ विरोध प्रदर्शनों का नेतृत्व किया।

4. अरविंद घोष (Aurobindo Ghosh): अरविंद घोष ने इस आंदोलन में प्रेरणादायक भूमिका निभाई और बंगाल के विभाजन के खिलाफ क्रांतिकारी कदम उठाए।

**स्वदेशी आंदोलन की प्रमुख घटनाएँ (Key Events of the Swadeshi Movement)**

1. स्वदेशी वस्त्रों का बहिष्कार (Boycott of Foreign Goods): स्वदेशी आंदोलन में ब्रिटिश वस्त्रों और सामान का बहिष्कार किया गया। इस आंदोलन में भारतीयों ने ब्रिटिश वस्त्रों को जलाया और खादी के वस्त्रों का उपयोग बढ़ाया।

2. स्वदेशी उत्पादों का प्रचार (Promotion of Swadeshi Products): स्वदेशी आंदोलन में स्थानीय भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए स्वदेशी उत्पादों की खरीद और उपयोग को बढ़ावा दिया गया।

3. कांग्रेस द्वारा समर्थन (Support by Congress): भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वदेशी आंदोलन का समर्थन किया और इसे अपने राजनीतिक एजेंडे में शामिल किया।

**कोलकाता अधिवेशन (CALCUTTA Session):** 1906 के कोलकाता अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वदेशी आंदोलन को एक प्रमुख मुद्दा माना और इसके लिए नीति तैयार की। इस अधिवेशन में पहली बार कांग्रेस द्वारा दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में स्वराज की मांग की गई

**स्वदेशी आंदोलन का स्वरूप (Nature of the Swadeshi Movement)**

स्वदेशी आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली हिस्सा था। यह आंदोलन न केवल राजनीतिक दृष्टि से, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी व्यापक था। यह ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ एक सशक्त विरोध था और भारतीय समाज को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में एक कदम था।

स्वदेशी आंदोलन का स्वरूप विभिन्न पहलुओं में देखा जा सकता है:

**1. राजनीतिक स्वरूप (Political Nature):**

स्वदेशी आंदोलन का राजनीतिक स्वरूप स्पष्ट था। यह आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा समर्थित था और इसका मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष करना था। बंगाल के विभाजन के विरोध में शुरू हुआ यह आंदोलन धीरे-धीरे पूरे देश में फैल गया। इसमें प्रमुख रूप से ब्रिटिश शासन के खिलाफ विरोध प्रदर्शन, हड़तालें, और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं द्वारा आह्वान शामिल था।

• बंगाल विभाजन (1905): ब्रिटिश सरकार के बंगाल विभाजन के निर्णय ने स्वदेशी आंदोलन को गति दी। बंगाल के विभाजन को सांप्रदायिक आधार पर किया गया था, जिससे भारतीय समाज में असंतोष बढ़ा। इस निर्णय के विरोध में भारतीयों ने स्वदेशी आंदोलन को अपने संघर्ष का हथियार बनाया।

• स्वदेशी वस्त्रों का बहिष्कार (Boycott of Foreign Goods): आंदोलन का एक प्रमुख राजनीतिक उद्देश्य ब्रिटिश वस्त्रों का बहिष्कार और स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार करना था। यह कदम ब्रिटिश व्यापारिक हितों को प्रभावित करने के लिए उठाया गया था।

2. सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप (Social and Cultural Nature):

स्वदेशी आंदोलन ने सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव डाला। यह आंदोलन भारतीय समाज में एकजुटता और राष्ट्रीय भावना को मजबूत करने का एक साधन बना।

• आत्मनिर्भरता की भावना (Self-reliance): स्वदेशी आंदोलन ने भारतीयों में आत्मनिर्भरता का संचार किया। इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज को विदेशी वस्त्रों और सामान पर निर्भर न रहने का संदेश देना था। इस आंदोलन ने खादी और हाथ से बने वस्त्रों को बढ़ावा दिया।

• सांप्रदायिक एकता (Communal Unity): बंगाल विभाजन के विरोध में हिंदू-मुसलमानों का एकजुट होना इस आंदोलन का महत्वपूर्ण पहलू था। भारतीय समाज में एकता और भाईचारे को बढ़ावा देने के लिए यह आंदोलन प्रभावी था।

• सामाजिक जागरूकता (Social Awareness): इस आंदोलन ने भारतीय समाज को ब्रिटिश साम्राज्य के शोषण और उसके कारण होने वाली सामाजिक और आर्थिक असमानताओं के बारे में जागरूक किया।

3. आर्थिक स्वरूप (Economic Nature):

स्वदेशी आंदोलन का आर्थिक स्वरूप भी महत्वपूर्ण था। इसका उद्देश्य भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश साम्राज्य से स्वतंत्र करना था और भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देना था।

• स्वदेशी उत्पादों का उपयोग (Use of Swadeshi Products): आंदोलन का एक प्रमुख उद्देश्य भारतीयों को विदेशी सामान का बहिष्कार करने और स्वदेशी उत्पादों का उपयोग करने के लिए प्रेरित करना था। इससे भारतीय उद्योगों को बढ़ावा मिला और ब्रिटिश व्यापार को नुकसान हुआ।

• स्वदेशी उद्योगों का प्रोत्साहन (Promotion of Indigenous Industries): स्वदेशी आंदोलन ने भारतीय हस्तशिल्प और छोटे उद्योगों को प्रोत्साहित किया। खासकर, खादी और अन्य स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा दिया गया।

4. संघर्ष का स्वरूप (Nature of the Struggle): स्वदेशी आंदोलन का संघर्ष विभिन्न रूपों में था:

• सार्वजनिक विरोध प्रदर्शन (Public Protests): स्वदेशी आंदोलन में सार्वजनिक विरोध प्रदर्शन और हड़तालें महत्वपूर्ण थीं। लोग सड़कों पर उतरकर विरोध करते थे और ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ नारों की आवाज उठाते थे।

• स्वदेशी सामान की बिक्री (Sale of Swadeshi Goods): स्वदेशी वस्त्रों की बिक्री और प्रचार के लिए मेलों और बाजारों का आयोजन किया गया, जहां केवल स्वदेशी सामान ही बेचे जाते थे।

• ब्रिटिश वस्त्रों का जलाना (Burning of Foreign Goods): आंदोलन के दौरान, भारतीयों ने ब्रिटिश वस्त्रों को सार्वजनिक रूप से जलाया और स्वदेशी वस्त्रों को बढ़ावा दिया।

स्वदेशी आंदोलन की सफलता और विफलता (Success and Failure of the Swadeshi Movement)

**सफलताएँ (Successes):**

1. ब्रिटिश वस्त्र उद्योग को नुकसान: स्वदेशी आंदोलन ने ब्रिटिश वस्त्र उद्योग को बहुत नुकसान पहुँचाया और भारतीय खादी उद्योग को एक नया रूप दिया।

2. भारतीय समाज में जागरूकता: इस आंदोलन ने भारतीय समाज में राजनीतिक जागरूकता और एकता की भावना को बढ़ाया। भारतीयों में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा मिली।

**विफलताएँ (Failures):**

1. ब्रिटिश सरकार की प्रतिक्रिया:

ब्रिटिश सरकार ने आंदोलन को दबाने के लिए दमनात्मक उपायों का सहारा लिया, जैसे पुलिस की बर्बरता और गिरफ्तारियाँ।

2. आंदोलन का विसंगति:

कुछ हिस्सों में आंदोलन के उद्देश्य में स्पष्टता की कमी थी, और इसके परिणामस्वरूप यह आंदोलन विभाजित हुआ और कमजोर पड़ा।

**निष्कर्ष (Conclusion)**

स्वदेशी आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण चरण था। इसने न केवल भारतीय समाज को ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष के लिए एकजुट किया, बल्कि आत्मनिर्भरता की भावना को भी बल दिया। हालांकि यह आंदोलन कुछ हद तक सफल नहीं हो सका, फिर भी इसने भारतीय जनता में स्वतंत्रता की आग को और प्रबल किया और भविष्य में होने वाले आंदोलनों की नींव रखी।

**Swadeshi Movement**

The **Swadeshi Movement** was a significant chapter in India's **freedom struggle**. It aimed to **promote self-reliance** and indigenous products while opposing **British rule**. The movement emerged in **Bengal in 1905** as a response to the **Partition of Bengal**.

## d. 1857 की क्रांति में बाबू कुंवर सिंह की भूमिका

परिचय: 1857 की क्रांति भारत के स्वतंत्रता संग्राम का पहला संगठित प्रयास था। इसे भारतीय उपमहाद्वीप में ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ विद्रोह के रूप में देखा जाता है। इस क्रांति में कई महान नेताओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिनमें बाबू कुँवर सिंह का नाम अग्रणी है। बाबू कुँवर सिंह ने इस संघर्ष में बिहार में ब्रिटिश शासकों के खिलाफ वीरता से लड़ा और अपनी जान की आहुति दी।

बाबू कुँवर सिंह का परिचय: बाबू कुँवर सिंह का जन्म 1777 में बिहार के आरा जिले में हुआ था। वे एक कुशल और बहादुर सामंत थे, जिन्होंने अपनी पूरी ज़िन्दगी अपनी जनता की सेवा में बिताई। वे राजपूत थे और उनके परिवार का राज्य में सम्मान था। ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ उनकी लड़ाई न केवल आरा जिले में, बल्कि बिहार के अन्य हिस्सों में भी लड़ी गई।

**1857 की क्रांति में बाबू कुँवर सिंह की भूमिका:**

1. ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष: बाबू कुँवर सिंह ने 1857 की क्रांति के दौरान ब्रिटिश सरकार के खिलाफ वीरता से युद्ध लड़ा। उन्होंने बिहार में ब्रिटिश शासकों के खिलाफ मोर्चा खोला और एक सशस्त्र विद्रोह का नेतृत्व किया। 1857 के विद्रोह के प्रारंभ में उन्होंने आरा और आसपास के क्षेत्रों में ब्रिटिश सेना का सामना किया। उनके नेतृत्व में बिहार में स्वतंत्रता संग्राम को एक मजबूत धार मिली।

2. आरा की लड़ाई और रणनीति: बाबू कुँवर सिंह की सबसे महत्वपूर्ण सैन्य उपलब्धि आरा की लड़ाई थी। उन्होंने ब्रिटिश सेना के खिलाफ गहरी रणनीति और स्थानीय समर्थन का लाभ उठाया। कुँवर सिंह ने अपने स्थानीय सैनिकों को एकत्रित किया और आरा शहर में ब्रिटिश किले पर आक्रमण किया। इस संघर्ष में उनके अद्वितीय नेतृत्व और साहस ने उन्हें एक प्रतीक बना दिया।

3. लोकप्रियता और समर्थन: बाबू कुँवर सिंह का संघर्ष न केवल शाही सेना तक सीमित था, बल्कि उन्होंने अपने क्षेत्र के आम लोगों, किसानों और अन्य जातियों को भी इस आंदोलन में शामिल किया। उनकी नायक जैसी छवि और संघर्ष ने उन्हें जनता के बीच लोकप्रिय बना दिया और उन्हें एक प्रतीकात्मक नेतृत्व प्रदान किया।

4. नायक के रूप में प्रतिष्ठा: बाबू कुँवर सिंह ने अपने संघर्ष को जारी रखा, भले ही उनकी शारीरिक स्थिति कमजोर हो गई थी। 1857 की क्रांति के अंतिम दौर में जब उनका शरीर घायल हो गया था, तब भी उन्होंने ब्रिटिश सेनाओं का मुकाबला किया और अंततः 23 अप्रैल 1858 को अपनी शहादत दी। उनकी वीरता और बलिदान ने उन्हें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया।

1857 की क्रांति के दौरान, बाबू कुंवर सिंह ने ब्रिटिश सेना के खिलाफ कई प्रमुख लड़ाइयाँ लड़ीं, जिनमें आरा की लड़ाई सबसे प्रमुख थी।

आरा की लड़ाई (1857):

यह लड़ाई 1857 में बाबू कुंवर सिंह द्वारा आरा किले पर ब्रिटिश सेना के खिलाफ लड़ी गई थी। कुंवर सिंह ने स्थानीय विद्रोहियों का नेतृत्व किया और अंग्रेजों को आरा किले से बाहर खदेड़ दिया। यह लड़ाई उनके साहस और संगठन क्षमता का उदाहरण बनी। हालांकि अंग्रेजों ने फिर से किले पर कब्जा कर लिया, लेकिन कुंवर सिंह का संघर्ष और वीरता आज भी याद की जाती है।

**बलिया और आसपास के क्षेत्र में संघर्ष:**

बाबू कुंवर सिंह ने बिहार के अन्य हिस्सों, जैसे बलिया और आसपास के क्षेत्रों में भी ब्रिटिश सेना के खिलाफ लड़ाई लड़ी। उनकी सेना में बड़ी संख्या में स्थानीय किसान और सैनिक शामिल थे। वे अपने इलाके में ब्रिटिश सत्ता को चुनौती देते हुए संघर्ष करते रहे।

**उनका युद्ध रणनीति:**

बाबू कुंवर सिंह ने अपनी सैन्य रणनीतियों से अंग्रेजों को कई बार चौंका दिया। वह घातक हमलों के द्वारा अंग्रेजों को कमजोर करते थे और फिर अचानक अपनी सेना को मोर्चे पर भेज देते थे। उनका यह युद्ध कौशल उन्हें एक महान रणनीतिकार बनाता है।

**अंतिम संघर्ष और मृत्यु:**

1858 में बाबू कुंवर सिंह की उम्र 70 वर्ष के करीब थी, लेकिन उनके मन में स्वतंत्रता की ललक थी। वे अंतिम समय तक ब्रिटिश सेना से संघर्ष करते रहे। आरा की लड़ाई के बाद, उन्होंने छावनी के पास अपना अंतिम युद्ध लड़ा। उनका शरीर कमजोर हो गया था, लेकिन उनका मनोबल ऊंचा था। अंततः वे अपनी गंभीर चोटों के कारण 26 अप्रैल 1858 को अपने प्राणों की आहुति दे दी।

**निष्कर्ष:**

बाबू कुंवर सिंह का योगदान 1857 की क्रांति में अद्वितीय था। उनका साहस, नेतृत्व और संघर्ष भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में मील का पत्थर साबित हुआ। उन्होंने यह साबित किया कि स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए हर स्तर पर संघर्ष जरूरी है, चाहे वह शारीरिक रूप से मजबूत हो या मानसिक रूप से। बाबू कुंवर सिंह की वीरता और बलिदान ने उन्हें भारतीय इतिहास में एक अमर नायक बना दिया। उनका संघर्ष आज भी हमें प्रेरणा देता है कि स्वतंत्रता की कीमत जानने के लिए हमें अपने जीवन में कठिनाइयों और बलिदानों का सामना करना होगा। बाबू कुंवर सिंह की वीरता और बलिदान को याद करते हुए हर वर्ष 26 अप्रैल को विजय उत्सव मनाया जाता है।

## e. 20 वी सदी के पूर्वार्द्ध में क्रांतिकारी संगठनों के उद्भव के कारक

**20वीं सदी के पहले तीन दशकों में क्रांतिकारी संगठनों के उद्भव के कारक**

20वीं सदी के पहले तीन दशकों में भारत में क्रांतिकारी संगठनों का उद्भव कई सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक कारणों के प्रभाव में हुआ। इन संगठनों ने स्वतंत्रता संग्राम के एक महत्वपूर्ण भाग के रूप में भारतीय जनता को अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरित किया। इस समय में कई क्रांतिकारी विचारधाराएँ और आंदोलनों का जन्म हुआ, जिनका उद्देश्य ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकना था। निम्नलिखित कारक इन क्रांतिकारी संगठनों के उद्भव के प्रमुख कारण थे:

**1. ब्रिटिश साम्राज्य का शोषण और उत्पीड़न:**

ब्रिटिश साम्राज्य के शासन ने भारतीय जनता का शोषण किया था। भारतीय संसाधनों का अंग्रेजों द्वारा जमकर शोषण और उनके द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था की कमजोर स्थिति ने भारतीय जनता में असंतोष और गुस्से की भावना उत्पन्न की। किसानों और मजदूरों को अत्यधिक करों और शोषण का सामना करना पड़ा। इसके कारण, कई क्रांतिकारी संगठनों ने सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अपनी लड़ाई शुरू की।

**2. विभाजन और असहमति के कारण असंतोष:**

ब्रिटिश शासन ने भारतीय समाज में जातिवाद, धर्म, और संस्कृति के आधार पर विभाजन को बढ़ावा दिया, जिससे भारतीय समाज में असंतोष और घृणा फैल गई। इस विभाजन के परिणामस्वरूप, कई क्रांतिकारी संगठनों ने भारतीय एकता को प्रोत्साहित करने और ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती देने के लिए अपने कदम बढ़ाए।

**3. आधुनिक शिक्षा और जागरूकता:**

19वीं सदी के अंत में, भारतीय समाज में शिक्षा के स्तर में सुधार हुआ। भारतीयों ने आधुनिक शिक्षा प्राप्त की, जिससे उनमें पश्चिमी विचारधारा और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति जागरूकता आई। इसके परिणामस्वरूप, भारतीयों ने अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की ठानी। कई क्रांतिकारी संगठन, जैसे कि नवजवान भारत सभा और अनुशीलन समिति, इस नई विचारधारा से प्रेरित होकर कार्यरत हुए।

**4. पहली क्रांतिकारी घटनाएँ:**

1857 में भारत में हुई प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारतीय जनता का ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ पहली बार संगठित विरोध देखा गया। हालांकि यह विद्रोह विफल हुआ, लेकिन इसने भारतीय समाज में स्वतंत्रता संग्राम की नींव रखी। इसके बाद 19वीं सदी के अंत में और 20वीं सदी के प्रारंभ में कई क्रांतिकारी घटनाएँ घटीं, जैसे कि चापेकर बंधुओं द्वारा अंग्रेज़ अफसर के खिलाफ हत्या और काकोरी कांड (1925), जिसने युवाओं को क्रांतिकारी संगठनों में शामिल होने के लिए प्रेरित किया।

**5. लोकप्रिय संघर्ष और राष्ट्रीय आंदोलन का विस्तार:**

महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अहिंसक आंदोलन और असहमति का रास्ता अपनाया। इसने क्रांतिकारी संगठनों के बीच एक विचारधारा की प्रतिस्पर्धा पैदा की। कुछ क्रांतिकारी संगठनों ने अहिंसक संघर्ष के बजाय सशस्त्र संघर्ष को प्राथमिकता दी, जैसे कि जन्माष्टमी पर काकोरी ट्रेन डकैती और भगत सिंह, राजगुरु, और सुखदेव का महान योगदान।

**6. विदेशी आक्रांताओं के खिलाफ विद्रोह:**

भारत में विदेशी आक्रांताओं के खिलाफ संघर्ष की लंबी परंपरा रही है, और 20वीं सदी में यह संघर्ष फिर से उभरकर सामने आया। क्रांतिकारी संगठनों ने भारतीय जनता के बीच इस संघर्ष की भावना को जागृत किया और उनका नेतृत्व किया। सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से ब्रिटिश शासन को चुनौती देने के लिए कई संगठन बने, जैसे गदर पार्टी और हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (HSRA)।

**7. सामाजिक और सांस्कृतिक विचारधाराएँ:**

सोशलिज्म, राष्ट्रवाद, और साम्राज्यवाद विरोधी विचारधाराएँ भारतीय समाज में तेजी से फैलने लगीं। इन विचारधाराओं ने भारतीय युवाओं को क्रांतिकारी संगठनों की ओर आकर्षित किया। भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक असमानता और जातिवाद के खिलाफ भी कई आंदोलनों का जन्म हुआ, जो सशस्त्र संघर्ष के रूप में परिणत हुए।

**8. राजनीतिक असफलता और निष्क्रियता से निराशा:**

कांग्रेस और अन्य राजनीतिक दलों की अहिंसक नीतियाँ और ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ कोई ठोस कार्यवाही नहीं करने के कारण कई युवा भारतीयों में निराशा और हताशा की भावना उत्पन्न हुई। इन युवाओं ने क्रांतिकारी संगठनों में भाग लिया, जो सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष करने के लिए तैयार थे।

**9. पश्चिमी साम्राज्य और साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष:**

समाजवादी और साम्राज्यवाद विरोधी विचारधाराएँ क्रांतिकारी संगठनों के कार्यों को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण थीं। यूरोप में हुई क्रांतिकारी घटनाओं ने भारतीयों को यह सिखाया कि कैसे साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष किया जा सकता है। इन विचारधाराओं के प्रभाव में कई क्रांतिकारी नेताओं ने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष की आवश्यकता महसूस की।

**10. रोलेट एक्ट**

इस एक्ट ने भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों को लागू करने के लिए काले कानूनों के नाम से जाने जाने वाला कानून पारित किया|इस कानून के कारण युवाओं में काफी असंतोष उत्पन्न हुआ|

**11. असहयोग आंदोलन की वापसी**

इस आंदोलन की असमय वापसी ने युवाओं को गांधीवादी आंदोलन से मुंह मोड़ने पर मजबूर कर दिया और वे क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़ गए|

**12.वैश्विक परिस्थितियाँ**

1905 का रूस जापान युद्ध, इथोपिया की विजय, प्रथम विश्वयुद्ध की घटनाएं, गदर पार्टी का प्रभाव, रूसी क्रांति, साम्यवाद का उदय, आयरलैंड में होम रूल आंदोलन आदि ने युवाओं को क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल करने के लिए प्रेरित किया|

ओजस्वी नेतृत्व

राम प्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह, सचिन्द्रनाथ सान्याल जैसे ओजस्वी क्रांतिकारियों ने देश के युवा वर्ग पर विशिष्ट पहचान बनाई, जिसने क्रांतिकारी संगठन स्थापित होने और विकसित होने में काफी सहायता मिली|

**निष्कर्ष:**

20वीं सदी के पहले तीन दशकों में भारतीय क्रांतिकारी संगठनों का उद्भव ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ संघर्ष, सामाजिक जागरूकता, और राजनीतिक असंतोष के परिणामस्वरूप हुआ। इन संगठनों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और भारतीय समाज में स्वतंत्रता और समानता की चेतना को जागरूक किया।

## 8. a पाल कला पर बौद्ध धर्म का प्रभाव

पाल कला पर बौद्ध धर्म का प्रभाव (Influence of Buddhism on Pala Art)

पाल कला (Pala Art) भारत की एक महत्वपूर्ण कला शैली रही है, जो 8वीं से लेकर 12वीं शताब्दी तक बंगाल और बिहार के पाल साम्राज्य के तहत प्रचलित थी। इस कला पर बौद्ध धर्म का गहरा प्रभाव था, और इसे बौद्ध धर्म के सांस्कृतिक और धार्मिक विचारों के अनुरूप ढाला गया था। पाल कला के प्रमुख पहलुओं को बौद्ध धर्म ने आकार दिया, जो इसे एक विशेष स्थान प्रदान करते हैं। निम्नलिखित बिंदुओं में पाल कला पर बौद्ध धर्म के प्रभाव को विस्तार से समझा सकते हैं:

**1. धार्मिक विषयों का चित्रण (Depiction of Religious Themes)**

पाल कला का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को चित्रित करना था। इस कला शैली में बौद्ध धर्म के तत्वों का अभिव्यक्तिकरण प्रमुख रूप से किया गया था।

• बुद्ध की मूर्तियाँ और चित्रण (Buddha Statues and Depictions): पाल कला में भगवान बुद्ध के विभिन्न रूपों, जैसे भिक्षु, बुद्ध के ध्यान में लीन रूप, और उनके जीवन के महत्वपूर्ण घटनाओं का चित्रण किया गया।

• बोधिसत्व और तंत्रवादी चित्रण (Bodhisattva and Tantric Depictions): बोधिसत्वों के चित्रण के माध्यम से करुणा और महापरिनिर्वाण के सिद्धांत को प्रदर्शित किया गया। इन चित्रों में बोधिसत्वों की अलौकिक और आध्यात्मिक स्थिति को दर्शाया गया।

**2. बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का चित्रण (Representation of Buddhist Principles)**

पाल कला में बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को प्रभावी तरीके से चित्रित किया गया। इनमें ध्यान, निर्वाण, और संसार के दुखों से मुक्ति के मार्ग को दर्शाया गया।

• ध्यान और ध्यान की स्थिति (Meditation and Meditative Poses): पाल कला के चित्रों में भगवान बुद्ध को ध्यान की अवस्था में दिखाया गया है। ध्यान का महत्व बौद्ध धर्म में अत्यधिक है, और यह चित्रण कला में ध्यान की मानसिक स्थिति को प्रस्तुत करता था।

• निराकार तत्त्व (Abstract Concepts): बौद्ध धर्म के तात्त्विक और निराकार विचारों को भी पाल कला के माध्यम से चित्रित किया गया, जैसे करुणा, शांति और अहिंसा के संदेश।

**3. वास्तुकला और मूर्तिकला पर प्रभाव (Influence on Architecture and Sculpture)**

पाल कला में मूर्तिकला का भी एक महत्वपूर्ण स्थान था, और इसका गहरा संबंध बौद्ध धर्म से था।

• बुद्ध की मूर्तियाँ (Buddha Statues): पाल कला के मूर्तिकारों ने भगवान बुद्ध की विशाल और भव्य मूर्तियाँ बनाई, जो बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए श्रद्धा का प्रतीक बन गईं।

• मंदिर और मठों की वास्तुकला (Temples and Monasteries Architecture): पाल कला के दौरान बौद्ध मंदिरों और मठों का निर्माण किया गया, जिनमें भगवान बुद्ध और बोधिसत्वों की मूर्तियाँ रखी जाती थीं । स्तूप, चैत्य और विहार का भी निर्माण किया गया

**4. तांत्रिक और बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का समागम (Fusion of Tantric and Buddhist Elements)**

पाल कला के विकास के साथ बौद्ध धर्म के तंत्रवादी तत्वों का भी समावेश हुआ। बौद्ध तंत्र को चित्रों में दर्शाया गया, जिससे इस कला शैली की विशिष्टता और बढ़ी।

• तांत्रिक देवी-देवताओं का चित्रण (Depiction of Tantric Deities): बौद्ध तंत्र के अनुसार देवी- देवताओं का चित्रण किया गया था, जिसमें इनका आध्यात्मिक और शक्तिशाली रूप प्रस्तुत किया गया।

• मंत्र और यंत्रों का उपयोग (Use of Mantras and Yantras): पाल कला के चित्रों में बौद्ध तंत्र के यंत्र और मंत्रों का प्रयोग भी देखा गया।

**5. पुस्तक कला और पेंटिंग (Book Art and Paintings)**

पाल कला के दौरान धार्मिक ग्रंथों की भी चित्रित प्रति तैयार की जाती थी, जिनमें बौद्ध धर्म के सिद्धांतों और जीवन घटनाओं का चित्रण किया गया।

• जिंदगी के महत्वपूर्ण घटनाएँ (Important Life Events): भगवान बुद्ध के जीवन के महत्वपूर्ण घटनाओं जैसे बोधि वृक्ष के नीचे ध्यान लगाना, निर्वाण प्राप्त करना आदि को पेंटिंग्स में चित्रित किया गया।

• धार्मिक पुस्तकें (Religious Manuscripts): पाल कला में धार्मिक पुस्तकों पर चित्रांकन किया गया था, जिसमें बौद्ध धर्म के सिद्धांत और शिक्षाएं दर्शाई जाती थीं।

6. प्राकृतिक सौंदर्य और बौद्ध विचार (Natural Beauty and Buddhist Philosophy)

पाल कला में प्रकृति के सुंदर चित्रण के साथ बौद्ध धर्म की शांति और अहिंसा का संदेश भी जोड़ा गया था।

• प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण (Depiction of Natural Sceneries): बौद्ध धर्म में प्रकृति के साथ संतुलन और शांति का महत्वपूर्ण स्थान है, जिसे पाल कला में सुंदर और शांतिपूर्ण प्राकृतिक दृश्यों के रूप में दर्शाया गया।

• वृक्षों और वनस्पतियों का चित्रण (Depiction of Trees and Plants): बोधि वृक्ष के चित्रण के माध्यम से निर्वाण और ध्यान की अवधारणा को कला में प्रस्तुत किया गया।

7. बौद्ध धर्म की सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण (Preservation of Buddhist Cultural Heritage)

पाल कला ने बौद्ध धर्म की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह कला पद्धति बौद्ध धर्म के धार्मिक और सांस्कृतिक विचारों को जीवित रखने का एक तरीका बनी।

• संस्कृत साहित्य का चित्रण (Depiction of Sanskrit Literature): पाल कला में बौद्ध धर्म के ग्रंथों जैसे त्रिपिटक, महायान बौद्ध साहित्य आदि का चित्रण किया गया, जो बौद्ध धर्म की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करते थे।

**पाल कला की विशेषताएँ (Features of Pala Art):**

पाल कला (Pala Art) भारतीय कला की एक प्रमुख शैली है, जो मुख्य रूप से बंगाल और बिहार के पाल साम्राज्य के दौरान विकसित हुई थी। यह कला शैली 8वीं शताब्दी से लेकर 12वीं शताब्दी तक अपने चरम पर रही। पाल कला ने भारतीय कला को एक नई दिशा दी, और इसका प्रभाव दक्षिण एशिया की कला पर भी पड़ा। पाल कला की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

• धार्मिक विषयवस्तु (Religious Themes): पाल कला में मुख्य रूप से बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म के विषयों का चित्रण किया गया। बौद्ध धर्म के इतिहास, तंत्र, बोधिसत्व, बुद्ध के जीवन की घटनाएँ, भगवान विष्णु, शिव और अन्य देवताओं की उपासना के चित्रण पर जोर दिया गया।

• सजावट और रंगों का उपयोग (Decorative and Use of Colors): पाल कला में रंगों का प्रयोग अत्यधिक आकर्षक और सूक्ष्मता से किया गया था। इन चित्रों में चमकीले और गहरे रंगों का इस्तेमाल किया गया, जिससे चित्रों में जीवन और भावनाओं की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से प्रकट होती थी। इसमें मुख्य रूप से सोने, चांदी, नीले, लाल, और हरे रंगों का उपयोग किया गया था।

• चित्रित हाथी, अश्व, और देवी-देवताओं का चित्रण (Depiction of Elephants, Horses, and Gods): पाल कला में पशुओं जैसे हाथी और घोड़े का चित्रण महत्वपूर्ण था, साथ ही देवी-देवताओं, बोधिसत्वों और अन्य धार्मिक व्यक्तित्वों का भी सुंदर चित्रण किया गया। इन चित्रों में देवी-देवताओं को संजीवनी शक्ति, शांति और सौंदर्य के प्रतीक के रूप में दिखाया गया।

• आकृतियों का समृद्ध और सूक्ष्म विवरण (Rich and Intricate Detailing of Figures): पाल कला के चित्रों में आकृतियों का बहुत ही समृद्ध और सूक्ष्म विवरण होता था। कलाकारों ने हर आकृति के हर अंग को सावधानीपूर्वक और सुंदरता से चित्रित किया। चेहरे के हाव-भाव, वस्त्रों की शैलियाँ और अंगों की स्थिति में बहुत ही प्रामाणिकता दिखाई देती थी।

• स्मारक और दीवार चित्रण (Monuments and Wall Paintings): पाल कला का मुख्य कार्य दीवारों पर चित्रित किया गया था। इन चित्रों को मुख्य रूप से बौद्ध मठों, मंदिरों और अन्य धार्मिक स्थानों पर देखा जा सकता था। इसके अलावा, मूर्तियाँ भी पाल कला का हिस्सा थीं, जो भगवान बुद्ध और बोधिसत्वों के चित्रण के रूप में थीं।

• तांत्रिक तत्वों का समावेश (Inclusion of Tantric Elements): पाल कला में तंत्रवादी तत्वों का भी समावेश देखा जाता था, जो बौद्ध तंत्रों और मंत्रों के आधार पर चित्रित होते थे। इसमें देवताओं और उनके विभिन्न रूपों की चित्रित आकृतियाँ भी देखने को मिलती थीं, जिनमें देवताओं की अलौकिक और आध्यात्मिक शक्ति को दर्शाया गया था।

• मूर्ति कला का विकास (Development of Sculpture Art): पाल काल में मूर्तिकला भी अत्यधिक विकसित हुई थी। बौद्ध मूर्तियों का निर्माण इस दौरान हुआ, जिसमें भगवान बुद्ध के विभिन्न रूपों का चित्रण किया गया। यह मूर्तियाँ जीवन, मृत्यु और निर्वाण के विषयों का चित्रण करती थीं।

• सारणी और शिलालेख (Scrolls and Inscriptions): पाल कला में चित्रित शिलालेखों का भी प्रयोग किया जाता था। इन शिलालेखों में धार्मिक विचार और कथाएँ लिखी जाती थीं, जो दर्शकों को कला के अर्थ और उद्देश्य से अवगत कराती थीं।

**निष्कर्ष (Conclusion)**

पाल कला पर बौद्ध धर्म का प्रभाव अत्यधिक गहरा और समृद्ध था। बौद्ध धर्म के धार्मिक और सांस्कृतिक विचारों ने पाल कला को दिशा दी और इस कला के माध्यम से बौद्ध सिद्धांतों को चित्रित किया गया। पाल कला के चित्रण, मूर्तिकला, और वास्तुकला में बौद्ध धर्म की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जो आज भी भारतीय कला की अमूल्य धरोहर मानी जाती है।

## b 1942 की क्रांति में जयप्रकाश नारायण का योगदान

भारत छोड़ो आंदोलन (Quit India Movement) 1942 में महात्मा गांधी द्वारा नेतृत्व किया गया था, जिसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य को भारत से बाहर निकालना था। यह आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक निर्णायक मोड़ था। इस आंदोलन में भारत के कोने-कोने से स्वतंत्रता सेनानियों ने भाग लिया, जिनमें जयप्रकाश नारायण भी प्रमुख थे। जयप्रकाश नारायण ने इस आंदोलन में न केवल सक्रिय भाग लिया, बल्कि इसके लिए एक महत्वपूर्ण रणनीतिक और विचारशील नेतृत्व प्रदान किया।

**जयप्रकाश नारायण का प्रारंभिक योगदान और समाजवादी दृष्टिकोण**

जयप्रकाश नारायण गांधीजी के विचारों से प्रभावित थे और उनका समाजवादी दृष्टिकोण भी काफी मजबूत था। जब गांधीजी ने 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन शुरू किया, तो जयप्रकाश नारायण ने इसका समर्थन किया और इस आंदोलन को सामाजिक और राजनीतिक बदलाव के रूप में देखा। उनका मानना था कि ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता का भी होना चाहिए।

• जयप्रकाश नारायण भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान गांधीजी के साथी के रूप में सक्रिय थे।

• उनका विचार था कि केवल सांस्कृतिक और राजनीतिक स्वतंत्रता से काम नहीं चलेगा, बल्कि भारतीय समाज में समानता, सामाजिक न्याय और शोषणमुक्त व्यवस्था की भी आवश्यकता है।

**आंदोलन में सक्रिय भागीदारी**

• गांधीजी के नेतृत्व में आंदोलन की तैयारी: जयप्रकाश नारायण ने आंदोलन के पहले गांधीजी के नेतृत्व को समर्थन दिया और भारतीय जनता को स्वतंत्रता संग्राम के इस निर्णायक मोड़ में एकजुट होने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने युवाओं और समाज के विभिन्न वर्गों को आंदोलन में भाग लेने के लिए उत्साहित किया।

• गांधीजी के सशस्त्र प्रतिरोध के खिलाफ रणनीति: जयप्रकाश नारायण गांधीजी के विचारों को समझते हुए आंदोलन में सशस्त्र संघर्ष को नकारते थे। उनका मानना था कि यह संघर्ष नैतिक रूप से अहिंसक होना चाहिए और इसका उद्देश्य ब्रिटिश शासन के खिलाफ संवैधानिक संघर्ष को आगे बढ़ाना था।

• गुप्त गतिविधियाँ और गिरफ्तारियां: जयप्रकाश नारायण ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ गुप्त गतिविधियाँ चलाईं और आंदोलन को गति देने के लिए कई बार सरकार की निगरानी से बचकर संगठनों का नेतृत्व किया। उन्होंने और उनके सहयोगियों ने विभिन्न स्थानों पर प्रचार सामग्री वितरित की, जो ब्रिटिश सरकार के खिलाफ जन जागरूकता फैलाने का काम करती थी।

• निरंतर संघर्ष और गिरफ्तारी: 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान ब्रिटिश सरकार ने कई प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया, जिनमें जयप्रकाश नारायण भी शामिल थे। जयप्रकाश नारायण को गिरफ्तारी के बाद एक महीनों तक जेल में रखा गया। उनकी गिरफ्तारी ने उन्हें और अधिक लोकप्रियता दिलाई और भारतीय समाज में उनके विचारों के लिए समर्थन बढ़ा।

**आजाद दस्ता और जयप्रकाश नारायण**

आजाद दस्ता (Azad Dasta) को स्वतंत्रता संग्राम के समय भारतीय युवाओं और स्वतंत्रता सेनानियों ने मिलकर स्थापित किया था। इसका प्रमुख उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष करना और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा देना था। यह संगठन विशेष रूप से उन युवा स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा स्थापित किया गया था, जो गांधीजी के अहिंसा के सिद्धांत से असहमत थे और वे सशस्त्र क्रांति के माध्यम से ब्रिटिश शासन को समाप्त करना चाहते थे।

**भारत छोड़ो आंदोलन में आजाद दस्ता की भूमिका**

a. सशस्त्र संघर्ष और आतंकवादी गतिविधियाँ:

आजाद दस्ता ने भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान ब्रिटिश प्रशासन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष की दिशा में कई प्रमुख कार्रवाइयाँ कीं। इनमें प्रमुख थे:

• ब्रिटिश अधिकारियों पर हमले: आजाद दस्ता के सदस्य ब्रिटिश अधिकारियों और पुलिस के खिलाफ हमले करने में सक्रिय थे। उन्होंने ब्रिटिश शासन के प्रशासनिक तंत्र को कमजोर करने के लिए आतंकवादी गतिविधियों में भाग लिया।

• सैनिकों की बगावत को प्रोत्साहित करना: उन्होंने भारतीय सेना के सैनिकों को ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ बगावत करने के लिए प्रेरित किया और उन्हें भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के साथ जुड़ने के लिए उत्साहित किया।

b. प्रचार और समर्थन जुटाना:

आजाद दस्ता ने भारतीय जनता को ब्रिटिश शासन के खिलाफ जन जागरूकता अभियान चलाया और ब्रिटिश शासन के विरोध में भारतीयों को संगठित करने का प्रयास किया। उन्होंने प्रचार सामग्री, पत्र-पत्रिकाएँ और पोस्टरों के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ गुस्सा और आक्रोश फैलाया।

**आजाद दस्ता का प्रभाव और निष्कर्ष**

भारत छोड़ो आंदोलन में आजाद दस्ता का योगदान सशस्त्र संघर्ष के रूप में था, जो गांधीजी के अहिंसा के सिद्धांत से अलग था। उनका मानना था कि ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के लिए सशस्त्र क्रांति आवश्यक है। हालांकि, आजाद दस्ता का सशस्त्र संघर्ष ब्रिटिश शासन के खिलाफ था, फिर भी इसने भारत छोड़ो आंदोलन को एक नई दिशा दी और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष को एक नई गति दी।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि आजाद दस्ता का योगदान भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण था, खासकर उस समय जब भारत छोड़ो आंदोलन में सशस्त्र संघर्ष की आवश्यकता महसूस हो रही थी। उनका संघर्ष भारतीय युवाओं को प्रेरित करता था और भारत को स्वतंत्रता दिलाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

## c ब्रिटिश काल में बिहार में तकनीकी शिक्षा

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में शिक्षा प्रणाली को एक तरह से पुनर्गठित किया गया। बिहार, जो उस समय ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन था, में भी तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। हालांकि इस समय की शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य भारतीय समाज को ब्रिटिश साम्राज्य के अनुरूप ढालना था, फिर भी तकनीकी शिक्षा का विकास कुछ हद तक हुआ था। इसके अंतर्गत कौशल आधारित और व्यावसायिक शिक्षा के पहलुओं को शामिल किया गया था, जो समय के साथ भारतीय समाज और बिहार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए आवश्यक थे।

### 1. ब्रिटिश काल में तकनीकी शिक्षा का प्रारंभ:

ब्रिटिश शासन के दौरान बिहार में तकनीकी शिक्षा की शुरुआत बहुत सीमित रूप में हुई। ब्रिटिशों ने प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के बजाय अपनी ज़रूरतों के अनुसार ऐसे संस्थान स्थापित किए जो भारतीय समाज को ब्रिटिश साम्राज्य के लिए प्रशिक्षित कर सकें। हालांकि, औद्योगिक विकास और तकनीकी शिक्षा के संदर्भ में यह कदम कुछ हद तक बढ़ा हुआ था।

### 2. बिहार में औद्योगिक और कौशल आधारित शिक्षा:

ब्रिटिश शासन के दौरान बिहार में औद्योगिक क्रांति के संदर्भ में ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया। हालांकि, 19वीं शताबदी के अंत में कुछ औद्योगिक क्षेत्रों में तकनीकी शिक्षा का आगमन हुआ। विशेष रूप से रेलवे और अन्य प्रमुख बुनियादी ढांचे के निर्माण में कौशल और तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस की गई। इससे संबंधित प्रशिक्षण संस्थान, जैसे कि कॉलेज और स्कूल स्थापित किए गए, जिनका उद्देश्य मजदूरों और श्रमिकों को तकनीकी और औद्योगिक कौशल प्रदान करना था।

### 3. बिहार में औद्योगिक स्कूलों और प्रशिक्षण केंद्रों का स्थापना:

ब्रिटिश काल में बिहार में औद्योगिक शिक्षा के लिए कुछ संस्थान स्थापित किए गए थे। इनमें प्रमुख रूप से औद्योगिक स्कूलों का निर्माण हुआ, जिनका उद्देश्य श्रमिकों और तकनीकी मजदूरों को औद्योगिक कार्यों में प्रशिक्षित करना था। पटना में एक औद्योगिक स्कूल की स्थापना की गई, जिसमें शिल्प, बढ़ईगीरी, लोहारगीरी आदि से संबंधित प्रशिक्षण

दिया जाता था। इसके साथ ही पटना और अन्य प्रमुख शहरों में कुछ तकनीकी स्कूलों की स्थापना की गई, जहाँ छात्रों को औद्योगिक कला और कारीगरी में प्रशिक्षण दिया जाता था।

**4. रेलवे और परिवहन के क्षेत्र में तकनीकी शिक्षा:**

ब्रिटिशों ने बिहार में रेलवे के विस्तार को प्राथमिकता दी, जिससे रेलवे विभाग में काम करने के लिए तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता बढ़ी। इस संदर्भ में, रेलवे ट्रेनिंग स्कूलों की स्थापना की गई, जहाँ कर्मचारियों को रेलवे संचालन, मरम्मत, और अन्य संबंधित तकनीकी कार्यों में प्रशिक्षित किया गया।

**5. विज्ञान और इंजीनियरिंग शिक्षा का विकास:**

ब्रिटिश काल में विज्ञान और इंजीनियरिंग शिक्षा में भी धीरे-धीरे बदलाव आए। हालांकि इसका मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश शासन की आर्थिक और रणनीतिक आवश्यकताओं को पूरा करना था, लेकिन इसका लाभ भारतीय समाज को भी हुआ। इस समय बिहार में तकनीकी शिक्षा की शुरुआत करने के लिए कुछ संस्थान खोले गए थे, जहां विज्ञान और इंजीनियरिंग से संबंधित शिक्षा दी जाती थी। पटना में कुछ ऐसे संस्थान थे जो विज्ञान और इंजीनियरिंग में शिक्षा देने का कार्य करते थे।

**6. तकनीकी शिक्षा की कमी और ब्रिटिश नीति:**

ब्रिटिशों की शिक्षा नीति भारतीयों को केवल सीमित स्तर की शिक्षा देने की थी, जिससे वे ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा करने के लिए प्रशिक्षित हो सकें। तकनीकी शिक्षा की दिशा में भारतीयों को पूरी तरह से समर्पित नहीं किया गया, और यह हमेशा ब्रिटिश साम्राज्य के हितों के अनुसार था। इसके कारण भारतीय समाज में तकनीकी शिक्षा का विकास बहुत धीमा था और इसे व्यापक रूप से स्वीकार नहीं किया गया था।

**7. बिहार में व्यावसायिक शिक्षा:**

ब्रिटिश शासन में बिहार में व्यावसायिक शिक्षा की भी शुरुआत हुई, जिसमें कुछ व्यापारिक और कारीगरी कौशलों की शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार के स्कूलों का उद्देश्य भारतीय समाज में ऐसे प्रशिक्षित व्यक्तियों को तैयार करना था, जो औद्योगिक कामों में या वाणिज्यिक गतिविधियों में ब्रिटिश प्रशासन के लिए काम कर सकें।

**ब्रिटिश काल में तकनीकी शिक्षा का प्रभाव**

ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में तकनीकी शिक्षा के विकास का प्रभाव व्यापक और गहरा था, लेकिन यह प्रभाव भारतीय समाज के विकास के लिए सीमित और आंशिक रूप से सकारात्मक था। ब्रिटिशों का मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज को अपनी ज़रूरतों के अनुसार प्रशिक्षित करना था ताकि वे ब्रिटिश साम्राज्य के विकास में सहायक बन सकें। इसके बावजूद, कुछ सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़े, जिनका भारतीय समाज और शिक्षा प्रणाली पर दीर्घकालिक असर हुआ।

1. ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की पूर्ति: ब्रिटिशों ने तकनीकी शिक्षा का विकास मुख्य रूप से अपने साम्राज्य के आर्थिक और प्रशासनिक हितों को ध्यान में रखते हुए किया। भारतीयों को मुख्य रूप से ऐसे कौशल सिखाए गए, जो ब्रिटिश प्रशासन, व्यापार और औद्योगिकीकरण के लिए सहायक हों। जैसे, रेलवे, निर्माण कार्य, और कृषि कार्य में मजदूरों और तकनीकी कर्मचारियों को प्रशिक्षित किया गया। इससे भारतीय समाज को सीमित तकनीकी कौशल प्राप्त हुआ, लेकिन इससे औद्योगिक क्रांति या समाज के समग्र विकास को ज्यादा लाभ नहीं हुआ।

2. श्रमिकों के लिए कौशल आधारित शिक्षा: ब्रिटिश शासन में भारतीयों को कुछ औद्योगिक कार्यों और कारीगरी के लिए प्रशिक्षित किया गया। तकनीकी स्कूलों और औद्योगिक स्कूलों की स्थापना की गई, जैसे पटना में औद्योगिक

स्कूल, जहां श्रमिकों को बढ़ईगीरी, लोहारगीरी, शिल्प आदि सिखाए जाते थे। यह शिक्षा मुख्य रूप से श्रमिक वर्ग के लिए थी, जिससे उन्हें औद्योगिक कार्यों में रोजगार मिलने की संभावना थी। हालांकि, यह शिक्षा उच्च श्रेणी के पेशेवरों और इंजीनियरों के लिए नहीं थी, और इसके कारण समाज में उच्च स्तर की तकनीकी शिक्षा का अभाव था।

3. विज्ञान और इंजीनियरिंग शिक्षा का आरंभ: ब्रिटिश काल में विज्ञान और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में कुछ सुधार हुए। विशेष रूप से पटना इंजीनियरिंग कॉलेज (अब NIT पटना) जैसी संस्थाओं की स्थापना ने इंजीनियरिंग और तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में एक नई दिशा दी। हालांकि, इन संस्थाओं का उद्देश्य भारतीय समाज को स्वतंत्रता की ओर नहीं, बल्कि औद्योगिकीकरण और ब्रिटिश शासन के लिए आवश्यक विशेषज्ञों को तैयार करना था। इसके बावजूद, इससे भारतीय समाज में तकनीकी शिक्षा की नींव रखी गई, जो बाद में स्वतंत्रता संग्राम और आधुनिक भारत के विकास में महत्वपूर्ण साबित हुई।

4. भारतीय समाज पर सीमित प्रभाव: ब्रिटिशों ने भारतीयों को केवल उन्हीं क्षेत्रों में प्रशिक्षित किया, जो उनके साम्राज्य के लिए महत्वपूर्ण थे, जैसे रेलवे और निर्माण क्षेत्र। इसके कारण, भारतीय समाज में तकनीकी शिक्षा के व्यापक और समग्र विकास में कमी रही। भारतीय समाज को विज्ञान, इंजीनियरिंग, और अन्य उच्च शिक्षा में जो योगदान मिल सकता था, वह ब्रिटिश नीति की वजह से सीमित हो गया। इसके परिणामस्वरूप, भारतीयों में औद्योगिक और तकनीकी शिक्षा का अभाव था, और इसने भारतीय समाज के समग्र विकास को अवरुद्ध किया।

5. ब्रिटिश नीति के तहत कौशल विकास: ब्रिटिश शिक्षा नीति ने भारतीयों को कौशल आधारित शिक्षा पर अधिक ध्यान देने के लिए प्रेरित किया, जैसे शिल्पकला, बढ़ईगिरी, लोहारगिरी, और अन्य कारीगिरी । हालांकि यह शिक्षा अधिकतर श्रमिकों के लिए थी, इससे उनके जीवन स्तर में कुछ सुधार हुआ और उन्हें औद्योगिक कार्यों में रोजगार मिलने का अवसर मिला। लेकिन यह उच्च स्तर की शिक्षा और सामाजिक उन्नति के लिए पर्याप्त नहीं था।

6. रोजगार और औद्योगिक विकास: ब्रिटिश शासन के दौरान, तकनीकी शिक्षा के कुछ संस्थान ऐसे थे, जो भारतीयों को औद्योगिक और व्यापारिक कार्यों में काम करने के लिए तैयार करते थे। इसके परिणामस्वरूप, भारतीयों को ब्रिटिश साम्राज्य की सेवा में आना पड़ा, और वे औद्योगिक कार्यों में श्रमिक के रूप में काम करते थे। हालांकि, इस तकनीकी शिक्षा का भारतीय समाज के समग्र विकास में सीमित योगदान था, क्योंकि यह मुख्य रूप से श्रमिक वर्ग के लिए थी और भारतीयों को उच्च स्तर की तकनीकी शिक्षा से वंचित रखा गया।

बिहार में कुछ प्रमुख तकनीकी संस्थान और उनके स्थापना वर्ष निम्नलिखित हैं:

1. पटना इंजीनियरिंग कॉलेज (अब NIT पटना)

- स्थापना वर्ष: 1886
- विवरण: पटना इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना ब्रिटिश काल में हुई थी, और यह बिहार का सबसे पुराना इंजीनियरिंग कॉलेज था। इसकी स्थापना का उद्देश्य छात्रों को इंजीनियरिंग और तकनीकी शिक्षा प्रदान करना था ताकि वे औद्योगिक विकास और ब्रिटिश शासन के हितों के लिए कार्य कर सकें। बाद में इसे राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (NIT) पटना का नाम दिया गया।

2. बिहार कालेज ऑफ इंजीनियरिंग, मुजफ्फरपुर (अब NIT मुजफ्फरपुर)

- स्थापना वर्ष: 1924

- विवरण: बिहार कालेज ऑफ इंजीनियरिंग की स्थापना मुजफ्फरपुर में ब्रिटिश काल में हुई थी। यह संस्थान इंजीनियरिंग के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा प्रदान करने के लिए स्थापित किया गया था।

3. 1928 में पटना सांइस कॉलेज की स्थापना

4. 1902 में कृषि शोध संबंधी केन्द्र की स्थापना

5. 1930 में पटना में पशु चिकित्सा कॉलेज की स्थापना

6. 1926 में इंडियन स्कूल ऑफ मांइस की स्थापना

## d संथाल विद्रोह का स्वरूप एवं परिणाम

संथाल विद्रोह (1855-56) भारत के पहले बड़े जनजातीय विद्रोहों में से एक था, जो ब्रिटिश शासन, जमींदारों, महाजनों और व्यापारियों द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण, सामाजिक अन्याय और प्रशासनिक दमन के खिलाफ हुआ। यह विद्रोह मुख्य रूप से संथाल जनजाति द्वारा बंगाल के भागलपुर और संथाल परगना (वर्तमान झारखंड, बिहार और पश्चिम बंगाल के कुछ हिस्से) में लड़ा गया था।

संथालों का यह विद्रोह ब्रिटिश उपनिवेशी शासन के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष था, जिसने प्रशासन को गंभीर चुनौती दी और ब्रिटिश सरकार को अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर किया।

### 1. संथाल विद्रोह की पृष्ठभूमि

(क) संथाल जनजाति और उनकी जीवनशैली

• संथाल जनजाति मुख्य रूप से झारखंड, बिहार, पश्चिम बंगाल और ओडिशा में निवास करती थी।

• वे कृषि, पशुपालन, वनों पर निर्भरता और पारंपरिक सामुदायिक जीवन जीते थे।

• संथालों की समाज व्यवस्था सामूहिक थी, जहां भूमि किसी एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि पूरे समुदाय की होती थी।

### (ख) ब्रिटिश शासन और बाहरी हस्तक्षेप

• 18वीं और 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश सरकार ने संथाल क्षेत्रों में राजस्व व्यवस्था लागू की, जिससे उनके पारंपरिक जीवन में बाधा आई।

• बाहरी जमींदारों, साहूकारों और व्यापारियों (दिकुओं) को संथाल इलाकों में बसाया गया, जिन्होंने उनका आर्थिक शोषण शुरू कर दिया।

• ब्रिटिश अधिकारियों ने संथालों की भूमि छीनकर उन्हें भारी करों और बंधुआ मजदूरी के जाल में फंसा दिया।

### 2. संथाल विद्रोह के प्रमुख कारण

(क) आर्थिक शोषण और जमींदारी व्यवस्था

• ब्रिटिश सरकार ने संथाल इलाकों में स्थायी बंदोबस्त प्रणाली लागू की, जिसमें जमींदारों और साहूकारों को शक्ति दी गई।

• जमींदारों और साहूकारों ने संथालों को भारी ब्याज दरों पर कर्ज देना शुरू किया, जिसे चुकाना असंभव था।

• जब संथाल कर्ज नहीं चुका पाते, तो उनकी भूमि छीन ली जाती और उन्हें बंधुआ मजदूर बना दिया जाता।

**(ख) बाहरी लोगों (दिकुओं) का बढ़ता प्रभाव**

• ब्रिटिश शासन के तहत बंगाल और बिहार से आए साहूकार, जमींदार और व्यापारी संथाल इलाकों में बस गए।

• इन बाहरी लोगों ने संथालों को भारी करों और शोषणकारी व्यापारिक नीतियों के माध्यम से कमजोर कर दिया।

• संथाल अपनी ही भूमि पर शोषित श्रमिक बन गए, जिससे उनमें गहरा असंतोष पनपा।

**(ग) ब्रिटिश प्रशासन और न्यायिक अन्याय**

• संथालों को ब्रिटिश कानूनों के अनुसार न्याय नहीं मिलता था, क्योंकि प्रशासन हमेशा जमींदारों और साहूकारों का पक्ष लेता था।

• पुलिस और प्रशासनिक अधिकारी संथालों के खिलाफ दमनकारी नीति अपनाते थे और उनका कोई पक्ष नहीं सुना जाता था।

• ब्रिटिश प्रशासन के अन्याय ने संथालों को हथियार उठाने के लिए मजबूर किया।

**(घ) पारंपरिक जीवनशैली का विनाश**

• ब्रिटिश वन कानूनों के कारण संथालों की वन-आधारित अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हुई।

• उन्हें जंगलों से बेदखल किया गया और उनके पारंपरिक शिकार, झूम खेती और वन उत्पादों के उपयोग पर रोक लगा दी गई।

• इससे संथालों के जीवन पर गहरा संकट आ गया और वे ब्रिटिश सरकार के खिलाफ संगठित होने लगे।

**3. संथाल विद्रोह का स्वरूप**

(क) नेतृत्व और विद्रोह की शुरुआत

• सिदो और कान्हू मुर्मू नामक दो संथाल भाइयों ने 30 जून 1855 को संथाल विद्रोह का नेतृत्व किया।

• उन्होंने भगवान का आदेश बताकर संथालों को ब्रिटिश सरकार और शोषकों के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित किया।

• उन्होंने "संथाल परगना से दिकुओं और ब्रिटिश अधिकारियों को बाहर निकालने" का नारा दिया।

**(ख) सशस्त्र संघर्ष और ब्रिटिश सेना से मुकाबला**

• विद्रोहियों ने हथियार के रूप में तीर-धनुष, भाले और पारंपरिक हथियारों का प्रयोग किया।

• हजारों संथाल किसानों ने जमींदारों, महाजनों, पुलिस चौकियों और ब्रिटिश अधिकारियों पर हमला किया।

• उन्होंने रेलवे लाइनों और डाक संचार व्यवस्था को बाधित किया।

**(ग) ब्रिटिश दमन और विद्रोह का अंत**

• ब्रिटिश सरकार ने संथाल विद्रोह को कुचलने के लिए विशेष सैनिक टुकड़ियों को भेजा।

• हजारों संथाल विद्रोहियों को मार दिया गया, गाँव जलाए गए और सिदो-कान्हू सहित कई नेताओं को पकड़कर फाँसी दे दी गई।

• दिसंबर 1855 तक यह विद्रोह कमजोर हो गया और 1856 तक पूरी तरह समाप्त कर दिया गया।

**4. संथाल विद्रोह के परिणाम**

**(क) ब्रिटिश प्रशासन पर प्रभाव**

• इस विद्रोह ने ब्रिटिश प्रशासन को यह अहसास कराया कि आदिवासी समाज को पूरी तरह अनदेखा करना संभव नहीं है।

• ब्रिटिश सरकार ने 1856 में "संथाल परगना अधिनियम" लागू किया, जिससे संथालों के लिए एक विशेष प्रशासनिक क्षेत्र बनाया गया।

• इसके बाद संथालों की भूमि और अधिकारों को कुछ हद तक संरक्षित किया गया।

**(ख) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पर प्रभाव**

• संथाल विद्रोह ने भारत के अन्य आदिवासी और किसान आंदोलनों को प्रेरित किया।

• इस विद्रोह से प्रेरित होकर बिरसा मुंडा ने मुंडा विद्रोह (1899-1900) का नेतृत्व किया।

• इस विद्रोह ने यह साबित कर दिया कि ब्रिटिश शासन के खिलाफ जन आंदोलन संगठित किए जा सकते हैं।

**(ग) सामाजिक और आर्थिक प्रभाव**

• संथाल विद्रोह ने आदिवासियों में सामाजिक जागरूकता और आत्मसम्मान की भावना को बढ़ाया।

• इस विद्रोह के बाद संथालों ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए राजनीतिक चेतना विकसित की।

• ब्रिटिश सरकार को संथाल इलाकों में अतिरिक्त कर न लगाने और शोषण कम करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

**निष्कर्ष:**

संथाल विद्रोह भारत के सबसे बड़े जनजातीय विद्रोहों में से एक था, जिसने ब्रिटिश उपनिवेशी शासन और उनके दमनकारी नीतियों को कड़ी चुनौती दी। यह विद्रोह भले ही विफल हो गया, लेकिन इसने आदिवासी संघर्ष और आत्मनिर्भरता की भावना को मजबूत किया। संथाल विद्रोह की सीख ने आगे चलकर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और आदिवासी अधिकार आंदोलनों को प्रेरित किया। इस प्रकार, यह विद्रोह ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीय किसानों और आदिवासियों की लड़ाई का एक ऐतिहासिक उदाहरण बना।

**e. रवींद्रनाथ टैगोर**

रवींद्रनाथ टैगोर एक महान कवि, दार्शनिक, शिक्षाविद् ,अंतर्राष्ट्रवादी ,उत्कृष्ट देशभक्त तथा कलाप्रेमी थे। इन्हें इनके विचारों एवं कार्यों के कारण ही 'भारत की आत्मा. के प्रवक्ता के रूप में जाना जाता है। रवींद्रनाथ एक रहस्यवादी कवि होते हुए भी आजीवन समाज और राजनीति पर सक्रिय चिंतन करते रहे। किंतु राजनीति में के कभी भी शारीरिक रूप से सक्रियता नहीं दिखाई ।परंतु उनकी मानसिक सक्रियता कुछ इस तरह व्यापक एवं प्रभावक थी कि उनके सिद्धांतों तथा विचारों ने गांधीजी तथा नेहरू को प्रेरित किया है।

**टैगोर के विचार तथा चिंतन**

राष्ट्रवाद एवं देशभक्ति की संकल्पना

टैगोर राष्ट्रवाद एवं देशभक्ति में अंतर स्पष्ट करते हुए अपनी मातृभूमि के प्रेम के आधार पर अपनी देशभक्ति को अभिव्यक्त करते थे । उनका कहना था कि "भारत जब अन्याय से जूझ रहा है, तो हमारा अधिकार है कि हम इसके विरुद्ध लड़े।" इस संदर्भ में वे 'बुराई के विरुद्ध लड़ाई को उत्तरदायित्व समझते है। बंगाल विभाजन के बाद अपने गीतों, भाषणों एवं लेखों के माध्यम से उन्होंने अंग्रेजों के प्रति अपना रोष प्रकट किया। इस दौरान रचित 'आमार सोनार बांग्ला' जैसे गीतों में उनकी देशभक्ति की भावना की परिपूर्णता परिलक्षित होती है। देशभक्ति की भावना से भरे गीतों एवं काव्य बंगाल विभाजन का विरोध कर रहे लोगों के लिय ऊर्जा-प्रदान किये। 1919 में अमृतसर के जालियाँवाला बाग कांड का विरोध करते हुए टैगोर ने ब्रिटिश सरकार द्वारा दिए गए 'सर'उपाधि को वापस कर दिया।

हालांकि अपने लेखों, कविताओं तथा भाषणों में टैगोर ने साफ तौर पर घोषणा की कि उन्हें सिर्फ राष्ट्रीय जड़ता से घृणा है। उनका मानना था कि राष्ट्रवाद को अवधारणा के मूल में घृणा है जो बुनियादी मानवीय मूल्यों के विश्वव्यापी प्रसार को रोकती है। टैगोर राष्ट्रवाद की संकल्पना को यूरोपीय देन मानते हुए इसे सांस्कृतिक की बजाय एक राजनीतिक आर्थिक संकल्पना के रूप में देखते थे

नशनलिज्म इन इंडिया लेख में टैगोर ने राष्ट्र-राज्य की आलोचना करते हुए कहा कि "राष्ट्रवाद का राजनीतिक एवं आर्थिक संगठनात्मक आधार सिर्फ उत्पादन में वृद्धि तथा मानवीय श्रम की बचत कर अधिक संपन्नता हासिल करने का प्रयास है।" उनके अनुसार राष्ट्रवाद से निम्नांकित बुराईयाँ उत्पन्न होती हैं-

- राष्ट्रवाद से अलगाव की प्रवृत्ति जन्म लेती है, जिससे मानव अहंकारी हो जाता है।
- उनका मानव की आत्मिक शक्ति में गहरा विश्वास था. अतः टैगोर कभी भी राष्ट्र को मानववाद में उपर मानने को तैयार नहीं थे।
- वे मानते थे कि संगठित राष्ट्रवाद मनुष्य की संवेदना को शून्य कर देता है। वह मनुष्य के प्राकृतिक गुण - प्रेम, नैतिकता को चरित करता है ।
- अतः राष्ट्रवाद आधुनिक पूंजीवादी साम्राज्यवादी तत्वों का बुद्धघोष है।

दरअसल विश्व बंधुत्व एवं मानवतावाद की बात करने वाले टैगोर मानते थे कि "देशभक्ति चहारदिवारी से बाहर के विचारों से जुड़ने के आजादी से हमें रोकती है। साथ ही. दूसरे देशों को जनता के दुखों को समझने की स्वतंत्रता भी सीमित कर देती है।" टैगोर का मत कि आर्थिक रूप से भारत भले ही पिछड़ा हो पर उसे मानवीय की दृष्टि से पिछड़ा नहीं होना चाहिये।

इसी संदर्भ में राष्ट्रवाद को अतिरेकता के खतरे को संकेत करते हुए उन्होंने कहा कि "मानव की सहिष्णुता तथा उसमे स्थितजन्य परमार्थ की भावना राष्ट्र की स्वार्थपरायण नीतियों के चलते सम हो जाएगी।" वे सामान्यतया राष्ट्रवाद को मानवतावाद के विकास का अवरोधक मानते थे। इसका कारण यह था कि उन्होंने संपूर्ण को एक मंच पर लाने को कल्पना को थी। इसलिये वे राष्ट्रीय राज्य आदेशों का पालन करने के लिये तैयार नहीं थे।